योगविद्या

वर्ष 11 अंक 7
जुलाई 2022
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2022

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अन्दर के प्लेट : 1. स्वामी शिवानन्द सरस्वती
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती
4. स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के प्रति गुरु-भाइयों की श्रद्धांजलि

धन्य यती श्री सरस्वती श्री सत्यानन्द महायोगी।
धन्य शृंग-पर्वत-गर्भज हे धन्य धन्य ओ निर्भोगी॥
क्षणभंगुर जीवन में सुख का लेश नहीं हैं पा सकते।
मायामय जीवन से प्रभु तक जीव नहीं हैं जा सकते॥
सूची के उस सूक्ष्म छिद्र में ऊँट भले घुस सकते हैं।
गंगा की प्रतिभामय कण से तेल भले ले सकते हैं॥
पर मायासहित प्रभु तक कौन गया बतलाओ तो।
माधव विष्णु विरंचि शंकर प्राणी कौन दिखाओ तो॥
जग मिथ्या प्रपंच मिथ्या, मिथ्या सृष्टि सकल जहान्।
जीव के अखिल विश्व में रक्षक मायापति भगवान्॥
इसी एक सद्ज्ञानमात्र से माया का संहार किया।
शिवानन्द-आनन्दकन्द से दीक्षा का संभार लिया॥
योगीश्वर श्री यती मुनीश्वर सभी तुम्हें हम पाते हैं।
दिव्य कान्तिमय चरणों के सौम्य गुणों को गाते हैं॥

– श्री जनार्दन प्रसाद द्विवेदी 'शास्त्री'

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 11 अंक 7 जुलाई 2022
(प्रकाशन का 60 वाँ वर्ष)

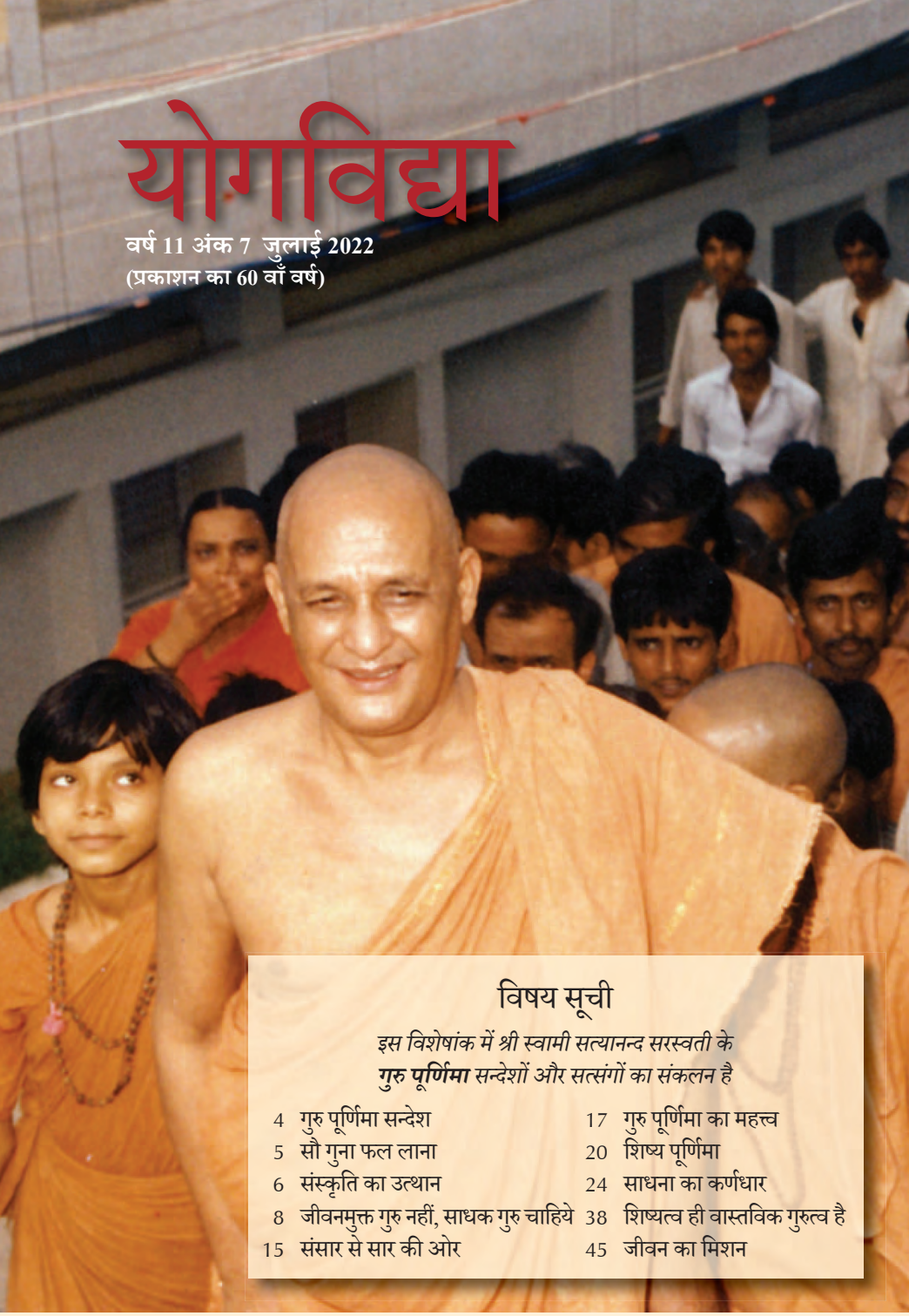

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के ***गुरु पूर्णिमा*** *सन्देशों और सत्संगों का संकलन है*

4 गुरु पूर्णिमा सन्देश
5 सौ गुना फल लाना
6 संस्कृति का उत्थान
8 जीवनमुक्त गुरु नहीं, साधक गुरु चाहिये
15 संसार से सार की ओर
17 गुरु पूर्णिमा का महत्त्व
20 शिष्य पूर्णिमा
24 साधना का कर्णधार
38 शिष्यत्व ही वास्तविक गुरुत्व है
45 जीवन का मिशन

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

गुरु पूर्णिमा सन्देश

श्री स्वामीजी द्वारा विश्वप्रेम को लिखा पत्र

राजनन्दगाँव
1 जुलाई 1958

आज गुरु पूर्णिमा है। हमारा हृदय सच्चे ज्ञान की ज्योति से प्रकाशित हो जाय। सत्यम् आज के दिन तुम्हारे लिये पवित्र आशीष की कामना करता है। तुम यह दिन पवित्रता, प्रेम और भक्ति से सम्पन्न करो।

इस अवसर पर मैं एक बार पुन: तुम्हारा ध्यान जीवन के लक्ष्य की ओर लाता हूँ। जो कुछ तुम कर रहे हो, उसके अलावा तुम उसके बारे में भी ध्यान रखो, जिसके लिये तुम जी रहे हो। तुम्हें अपने प्रभु का अनुभव करना है, उसे पाना है।

मैं तुमसे गृह के कर्त्तव्यों की त्यागने को नहीं कह रहा हूँ। ईश्वर से साक्षात्कार करने के लिये न तो तुम्हें और न किसी को घर छोड़ने की जरूरत है। तुम्हें अपने हृदय में अपने प्रभु के लिये अविचल विश्वास और सर्वोत्तम प्यार उत्पन्न करना ही होगा।

तुम्हारी आत्मा सर्वशक्तिमान है, तुम्हारा प्रभु भी सर्वशक्तिमान है। वह तुम्हारे अन्दर है, तुम ध्यान में उससे मिल सकते हो। वह तुम्हारे सम्मुख साकार होकर आयेगा। वह तुमसे बातें करेगा। वह तुम्हारा हाथ पकड़ कर ले चलेगा। जब कोई व्यक्ति ध्यान में अपनी शारीरिक चेतना के परे चला जाता है तब उसका 'अन्तर का प्रभु' प्रकट होता है। वह तुम्हारे पास आयेगा। तुम उसकी प्रिय और स्वर्गीय उपस्थिति का अनुभव करोगे। गुरु पूर्णिमा के अवसर पर अपने विश्वास को बढ़ाओ। अपनी आध्यात्मिक साधना को नये उत्साह से प्रारम्भ करो। ब्रह्मविद्या गुरुओं का तुम्हें आशीर्वाद!

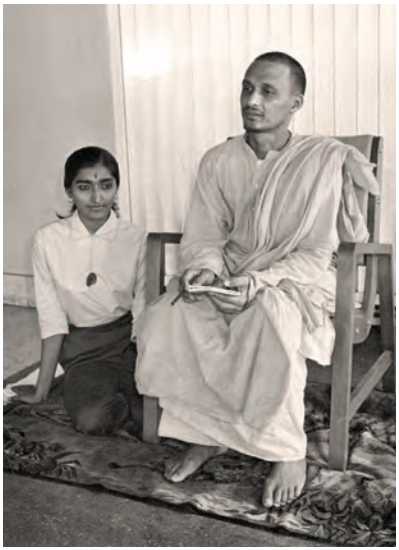

सौ गुना फल लाना

प्रभु की अमर सन्तान! तुम्हें सपरिवार दिव्यात्मा गुरुजनों के आशीष! गुरु पूर्णिमा मंगलमयी हो। आज प्रकाश-प्राप्ति का दिन है। सर्वत्र दिव्य ज्योति का प्रवाह है। उस ज्योति के दर्शन करो और अपने प्रियजनों को बतलाओ कि तुम उसे देख रहे हो। द्वार खोलो, वातायन खोलो और घर के हर कोने में दिव्य ज्योति को चमकने दो। क्या तुम समझे कि घर से क्या तात्पर्य है? द्वार, वातायन, झरोखे क्या हैं?

गुरु पूर्णिमा आत्मज्ञान का जन्मदिन है। इस दिन आशीर्वादों ने अभिशापों को पराजित किया। इस दिन हमें ईश्वरीय अनुराग मिला। गुरु पूर्णिमा हमें हमारे कर्त्तव्यों का स्मरण दिलाती है। यह निरीक्षण का दिन है, जब दिव्य गुरु अपने शिष्यों से 'अन्त:पुर' में भेंट करते हैं।

आज के दिन से फिर उत्साह जगावें। बीती बातें भूलें। अपने संकल्प दुहरावें। उत्तरदायित्वों को पहचानें। बुराइयाँ छोड़ें। अच्छाइयाँ जगावें। साधना चालू करें। पानी बरस रहा है। नाम का बीज बो दो। हृदय खेत है, साधना जल, सत्संग है बाड़ी-घेरा। गुरु निराई करने वाला। भगवत्कृपा इसकी फसल होगी।

जानवरों से खेत बचाओ। ताली बजा-बजाकर पखेरुओं को भगाओ। श्रद्धा की खाद डालो। बीज छोटा, पर फसल लाजवाब। तुम किसान हो! उठो और चलो!

हे श्रद्धालु किसान! परिश्रमी हलवाहे! उठा हल और बैलों को जोत। खेती का मौसम आया है। समय मत चूक। एक बोने वाला बोने निकला। बोते-बोते कुछ बीज मार्ग के किनारे छितर गए और रौंद दिए गए। कुछ आकाश के पंछियों ने चुग लिए। कुछ बंजर पर गिरे और उपजे पर तरी न मिलने से सूख गये। कुछ झाड़ियों में गिरे, और बढ़ती हुई झाड़ियों ने उन्हें दबा दिया। कुछ उर्वरा पर गिरे और उग कर सौगुना फल लाये।

मैं भी बीज बोता हूँ। तुम अच्छी भूमि बनकर सौ गुना फल लाना। कहीं शैतान न चुग लें। कहीं बोने के बाद सूख न जायें, बल्कि वचन सुनकर भले और उत्तम मन में धीरज से फल लावें। फिर तुमसे कहता हूँ कि भले और उत्तम मन वाले बनो कि मेरा बीज सौ गुना फल लावे।

– गुरु पूर्णिमा, 21 जुलाई 1967, मुंगेर

संस्कृति का उत्थान

भगवत् प्रेमी सत्संगियों! मैं योग का प्रचार अवश्य करता हूँ, पर योग का शिक्षक नहीं हूँ। मैंने बचपन से आज तक एक ही बात सोची है कि मेरी संस्कृति, मेरा धर्म और मेरा देश किस प्रकार गौरवशाली बने। मैंने दुनिया के अनेक देशों के बारे में पढ़ा। उनके धन और सम्पदा के बारे में सोचा, जाना और देखा तो ऐसा लगा कि दरिद्रता, अविद्या और व्यापार के कारण सारे

संसार के लोग हम लोगों को हेय दृष्टि से देखते हैं और हम भी अपने को तुच्छ समझते हैं। जातीय महानता, प्राचीन इतिहास, महान् व्यक्तित्व, गौरवशाली परम्परा और विपुल शास्त्र सम्पदा के बावजूद संसार में हमारा कोई स्थान नहीं। हमारी राजनीति दुर्बल, हमारे नेता दुर्बल, हमारा शासन दुर्बल और हमारी योजनाएँ दुर्बल हैं।

मैं बचपन से ही सोचते आ रहा हूँ और यही मेरे जीवन का प्रथम और अन्तिम ध्येय भी रहेगा कि मैं और मेरे शिष्यगण केवल इस प्रण को लेकर आगे बढ़ें कि मुझे अपनी जाति, अपने धर्म, अपनी संस्कृति और अपने इतिहास को पुन: गौरवशाली बनाना है। मुझे हिन्दुस्तान से उसी प्रकार प्रेम है, जिस प्रकार किसी व्यक्ति को अपनी पत्नी, पिता या माता से रहता है। जब मैं अपने हिन्दुस्तान के लिए सोचता हूँ, तो मुझे लगता है कि क्या इसका गौरव बिक गया या मर चुका है? ऐसा सोचकर मुझे बड़ा कष्ट होता है। हृदय में एक वेदनापूर्ण तूफान उभरता है। मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप लोग भी मेरे विचारों के साझीदार बनें। आपको सपरिवार अपनी जाति और धर्म को आगे बढ़ाने के लिए यत्न करना चाहिए।

केवल अपने को हिन्दू कहने से काम नहीं चलेगा, इसके लिए कुछ करना होगा। आप विश्व को दिखलायें कि हिन्दू ईमानदार, महान् और सहनशील होता है। हमने शताब्दियों की ठोकरें खायीं और इतिहास को पछाड़ा है। सभ्यताओं की दौड़ में हम हमेशा जीवित रहे। आज हमारे सामने संकल्प और विकल्प उपस्थित हैं। संकल्प तो आप जानते ही हैं।

मैं भगवान् से यह प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे बल दे जिससे मैं इस जाति, इस धर्म को पुन: गौरवशाली पद पर स्थापित कर सकूँ।

मुझे न तो मोक्ष की आवश्यकता है, न आध्यात्मिक जीवन ही प्रिय है। मैं केवल एक ही कारण से संन्यासी बना और इसी विचार से संन्यासी बनकर रहूँगा कि हिन्दू संस्कृति का उत्थान हो।

हरि: ॐ तत्सत्

– गुरु पूर्णिमा, 10 जुलाई 1968,
श्री स्वामीजी की प्रथम विश्व यात्रा में
पेरिस से भेजा गया गुरु पूर्णिमा सन्देश

जीवनमुक्त गुरु नहीं, साधक गुरु चाहिये

आज का दिन, किसी एक गुरु का दिन नहीं, बल्कि सब गुरुओं का दिन है। जिस प्रकार से पितृपक्ष में हम सब लोग मिलकर सब पितरों को पूजते हैं, उसी प्रकार आज का दिन केवल मेरे गुरु के लिये नहीं, केवल आपके गुरु के लिये नहीं, संसार में जितने भी शिष्य हैं, उन सब के गुरुओं के लिये है। आज का दिन केवल गुरु पूजा का ही दिन नहीं, बल्कि साधना का प्रथम दिवस भी है। संन्यासी लोग आज के दिन चातुर्मास-संकल्प ग्रहण करते हैं। गृहस्थ लोग अनुष्ठान आरम्भ करते हैं और इस तरह आने वाले चार महीने हमारे अन्दर के जीवन को उज्ज्वल करने के लिये कुछ साधनाओं में व्यतीत होते हैं।

साल में बारह महीने होते हैं। आठ महीने हम लोग अपने अर्थ और काम के हेतु प्रवृत्त रहते हैं। अब ये आने वाले जो चार महीने हैं, वे धर्म और मोक्ष की प्राप्ति के हेतु हैं। अनुष्ठानों का, स्वाध्याय का और साधना का आरम्भ अब शुरू होता है। इसको हम लोग गुरु पूर्णिमा भी कहते हैं, गुरु पूजा भी कहते हैं, और व्यास पूजा भी कहते हैं।

यह हमारे देश की बहुत प्राचीन परम्परा है, जिसे हम लोग संसार के कोने-कोने में ले जाने की कोशिश कर रहे हैं। गुरु परम्परा का उदय, इसका श्रीगणेश भारत में हुआ। गुरु-शिष्यों की यह पवित्र परम्परा वेदों, उपनिषदों, जैनों और बौद्धों के काल से अनवरत रूप से चली आ रही है, परन्तु आज यह परम्परा विशृंखलित हो रही है। हिन्दुस्तान के बाहर के देशों में साधु-महात्मा होते हैं, मठ होते हैं, मगर गुरु परम्परा नहीं है। चेले होते हैं, मगर गुरु नहीं होते।

गुरु के महत्त्व को कैसे समझाऊँ? मुझे लगता है कि गुरु उस पवित्र सूर्य के समान है, जो कभी मेघों से भी आच्छादित हो जाता है, परन्तु हमको सदा उसकी प्रतीक्षा रहती है। अथवा गुरु की कृपा चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्सना की तरह है। चन्द्रमा घटता और बढ़ता है, मगर चकोर निरन्तर इसी आशा में रहता है कि किस दिन चन्द्रमा अपनी पूर्णता को प्राप्त करेगा। शिष्य के लिये गुरु पूर्ण होता है, भले ही गुरु अपने में पूर्ण न हो। जैसे चकोर चन्द्रमा की पूर्णता की प्रतीक्षा करता है, वैसे शिष्य भी गुरु-कृपा की प्रतीक्षा करता है। हजारों वर्षों से लेकर आज तक हमारे देश में यह जो परम्परा चली आ रही है, उसी परम्परा को निभाने के लिये, जागृत करने के लिये केवल इसी नगर में नहीं, बल्कि संसार के हजारों नगरों में, लाखों लोग बैठ कर आज गुरु पूर्णिमा मनाते होंगे।

गुरु – अपनी आत्मा का प्रतिबिम्ब

माता-पिता से वात्सल्य की प्राप्ति होती है। बंधु, सखा, स्त्री, पति इत्यादि सब लोगों से हमको अलग-अलग भावनाओं की प्राप्ति होती है, परन्तु ये भावनाएँ सीमित होती हैं। पिता से जिस भावना की, जिस प्रेम की प्राप्ति होती है, वह हमें अपनी स्त्री से नहीं मिल सकता। यह हमको अपने पुत्र अथवा पुत्री से भी नहीं मिल सकता है। शायद भारत के ऋषियों ने गुरु के प्रेम में ही इस पूर्णता को पाया होगा।

यहाँ एक बात मैं आपको स्मरण दिला दूँ। गुरु-शिष्य में केवल प्रेम का ही सम्बन्ध नहीं, अनुशासन का सम्बन्ध भी होना चाहिये। अनुशासन के बिना प्रेम का सम्बन्ध स्वच्छन्दता और मनमानी की छूट देता है, और इससे फिर कर्तव्य-विमुखता आ जाती है। केवल अनुशासन हो और प्रेम सम्बन्ध न हो, तो यह वैमनस्य और कटुता का कारण बन जायेगा। अत: प्रेम और अनुशासन, दोनों को साथ-साथ लेकर चलना होगा।

मुझे याद है कि अपने गुरु के साथ बारह साल रहते समय मेरा कभी अपने गुरु के साथ झगड़ा होता था, कभी प्रेम होता था और कभी मैं अपने गुरु के निर्णय की आलोचना भी करता था, मगर अन्त में और आज तक भी, मेरा अपने गुरु की आत्मा के साथ पूर्ण योग रहा है। यह बात याद रख लो कि अपना गुरु अपनी ही आत्मा का प्रतिबिम्ब होता है। अपना इष्ट-देव अपनी ही आत्मा का प्रतिबिम्ब होता है। जैसे-जैसे आपकी आत्मा शुद्ध होती चली जाएगी, वैसे-वैसे आपको अपने गुरु में पवित्रता का आभास होता चला जाएगा, और जैसे-जैसे आपका हृदय अपवित्र होता चला जाएगा, वैसे-वैसे आपको अपने इष्ट में, अपने गुरु में अपवित्रता का आभास मिलेगा।

शिष्य के अन्त:करण की शुद्धि, पवित्रता, दिव्यता, उज्ज्वलता और वर्चस्व के अनुसार, उसको अपने गुरु में महिमा, ज्योति, प्रकाश और ज्ञान का दर्शन होता है। जैसा आपका चेहरा होगा उसी प्रकार आपको दर्पण में दिखेगा। गुरु दर्पण है जो शिष्य को उसका चेहरा दिखलाता है। मैंने अनेकों बार अपने गुरुजी से कहा, 'आप पाखण्डी हो' और आज मुझे ऐसा लगता है कि उस समय मैं पाखण्डी था। एक बार मुझे अपने गुरु से बहुत प्रेम हो गया, मुझे ऐसा लगा कि मेरे गुरु समस्त विश्व के अवतार हैं। मुझे ऐसा लगता है कि उस समय मेरी आत्मा शुद्ध होती जा रही थी।

जैसे-जैसे शिष्य के अन्त:करण की स्फूर्ति और उज्ज्वलता का विकास होता है, वैसे-वैसे गुरु में अनुराग उसके अन्त:स्थल पर प्रकाशित होता जाता

है। याद रखो, फिर से कहता हूँ, गुरु हो या ईश्वर हो, वह मेरी आत्मा का प्रतिबिम्ब है। यदि मेरा गुरु कच्चा है तो वह मेरे कच्चे हृदय का प्रतिबिम्ब है, और यदि मेरा गुरु पक्का है तो वह मेरे पक्के हृदय का प्रतिबिम्ब है। जैसा मैं अपने गुरु में देखता हूँ, ठीक वैसा ही मैं हूँ, इस बात को भूलना नहीं। जिस दिन तुमको अपने गुरु में परिपूर्णता मालूम होने लग जाएगी, ठीक उसी दिन तुम भी परिपूर्ण हो जाओगे। जब इस आधार को लेकर हम चलते हैं, तो इस मार्ग में हमको उन्नति की प्राप्ति होती है।

शिष्य का प्रशिक्षण

गुरु-शिष्य की यह परम्परा हमारे देश में आज लुप्त हो रही है। हमें देश की इस प्राचीन परम्परा को पुन: जगाना पड़ेगा। मैं अक्सर कहता हूँ, 'पान सड़ा क्यों? घोड़ा अड़ा क्यों? और चेला बिगड़ा क्यों?' इसीलिये कि फेरा नहीं गया था। गुरु में इतना आत्मविश्वास होना चाहिये कि यदि कोई संन्यासी उसे पसन्द नहीं है तो वह उसे आश्रम के बाहर कर दे। चाहे वह फिर आप में से किसी के घर में टिके या इधर-उधर घूमे, हमको इसकी परवाह नहीं है। लोग यही तो कहेंगे न कि स्वामीजी बुरे हैं। मगर हमें जो करना है, करेंगे। शिष्य अपना धर्म जाने या न जाने, लेकिन गुरु अपना धर्म जानता है। अगर हम आपको आश्रम के गेट के बाहर निकाल देते हैं, हो सकता है आप किसी गृहस्थ के यहाँ टिककर वहाँ पर अच्छी-बुरी बातें बोलें। जो गुरु इससे हट जाता है, हार मान जाता है, वह गुरु नहीं है। क्या गुरु अपनी कीर्ति और इज्जत बनाये रखने के लिये अपने शिष्य को दण्ड देने से रुक जायेगा? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता है।

जब तक चेले को फेरा नहीं जायेगा, जूते से, डण्डे से, पत्थर से, गाली और निन्दा से, तब तक चेला सुधर नहीं सकता है। ऐसा असंभव है। संसार में ऐसी कौन-सी मूर्ति है, जो हथोड़े और छेनी के बिना बनी हो? कौन-सी ऐसी शिला है जिसके पत्थर पर छेनी और हथौड़े की मार न लगी हो? चाहे कोणार्क में जाकर देखो, या जगन्नाथपुरी में जाकर देखो या अजंता-एलोरा की गुफाओं में जाकर देखो। अरे! दर्जी से पूछो, किस कपड़े को काटे बिना उसने कुर्ता बनाया? मोची से पूछो, किस चमड़े को काटे बिना उसने जूता बनाया है? किसान से पूछो, किस खेत को जोते बिना उसने बीज बोया है? चेला बिना मार के सुधरेगा? जन्म-जन्म के कुसंस्कार, माँ-बाप का दिया हुआ अज्ञान, कॉलेज और यूनिवर्सिटी की दी हुई अधपकी शिक्षा क्या गीता, उपनिषदों या शीर्षासन

करने से छूट सकती है? दो थप्पड़ मारकर बोलो – 'गेट आउट।' बच्चा जब बाहर निकलेगा तब आत्मचिंतन के लिये मजबूर होना पड़ेगा।

जो गुरु शिष्य को मिठाई देता है, वह गुरु नालायक है और जो गुरु अपने चेलों को बोलता है, 'तुमको ऐसा नहीं करना है', वह गुरु डॉक्टर है। वह गुरु क्यूनाईन की दवाई है, जो बीमारी को अवश्य सुधार देती है।

इसलिए गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को इस देश में पुनर्जागृत करना है। यह परम्परा संसार में थी, मगर अब खत्म हो गयी है, क्योंकि चेले लोग अपने को संभालने के लिये बोलते हैं, 'गुरुजी को दयालु होना चाहिये, कृपालु होना चाहिये, करुणामय होना चाहिये, क्रोध नहीं करना चाहिये।' क्यों? इसलिए कि चेला लोग जूता नहीं खाना चाहते, आम के साथ चटनी का भोग चाहते हैं, लक्स साबुन लगाना चाहते हैं, गृहस्थों से भिक्षा मांगकर आराम के साथ बम्-बम्-महादेव चलाना चाहते हैं। और इतने पर भी गुरुजी कुछ न बोलें?

इस देश में जो गुरु दिलवाले हैं, जिनका दिल मजबूत है, वही इस गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह कर सकेंगे, और जो गुरु मुर्गी और खरगोश की तरह कमजोर दिलवाले हैं, वे इस परम्परा को आगे नहीं बढ़ा सकते। वे तो बोलेंगे, 'चेला बेटा, लो हलवा खाओ, लेकिन बाहर जाकर मेरा भला-बुरा मत कहो।' हम ऐसा कहने वाले नहीं हैं। जो हमको करना है, हम उसको करेंगे, क्योंकि हम अपना धर्म जानते हैं, तुम अपना धर्म नहीं जानते।

आदर्श शिष्य का दृष्टान्त

तिब्बत के एक महान् योगी मिलारेप्पा की बात बतलाता हूँ। आठ साल की उम्र में उसको मठ में भेजा गया। उसके वहाँ पहुँचते ही गुरु ने पूछा, 'तुम कहाँ से आये हो?' बच्चे ने कहा, 'हमारे पिताजी ने हमको आपकी शरण में भेजा है।' गुरुजी ने उसको दो चाँटे मार दिये, कहा, 'आठ साल का लड़का शरण माँगता है?' मगर मिलारेप्पा वहाँ रहा। रोज-रोज उसको लातें पड़ती थीं, गालियाँ मिलती थीं, और अकारण ही निन्दा सुननी पड़ती थी।

एक दिन गुरुजी चले गये तो गुरु-पत्नी ने ताजे मांस का एक टुकड़ा लाकर कहा, 'बेटा, तुम इसको खा लो,' क्योंकि अभी तक मिलारेप्पा ने हमेशा सड़ा मांस ही खाया था। जैसे हम कभी-कभी बासी खिचड़ी देते हैं तो आश्रम से बहुत-से चेले चले जाते हैं। बोलते हैं, 'अरे बापरे! यहाँ तो बासी खिचड़ी देते हैं।' चेला बासी खिचड़ी के बिना ताजा नहीं बन सकता है, यह याद रख लो। तो जब गुरु-पत्नी मिलारेप्पा को मांस दे रही थी तब गुरुजी पिछवाड़े से आ गये, और दोनों को खूब गालियाँ देकर कहा, 'छोटा-सा छोकरा होकर तुम्हारा चाल-चलन इतना खराब हो गया कि अब तुम अपनी गुरु-पत्नी से ही प्रेम करने लगे हो? तुम निकल जाओ यहाँ से। वहाँ सामने टीले पर तुम इन पत्थरों को ढोकर ले जाओ और अलग से अपनी कुटिया बनाओ।'

अब उस बेचारे चौदह साल के लड़के का यही काम था कि रोज पत्थरों को ढोकर अपनी कुटिया बनाये। इस तरह उसको ठेस पर ठेस लगती थी, मगर वह चेला भी ऐसा था कि गुरुजी पत्थर तो चेला वज्र। गुरुजी हथौड़ी, तो चेला स्टील। बिल्कुल टूटे ही नहीं। ऐसा करते-करते जब नौ महीने हो गये और सब पत्थर ऊपर पहुँच गये तब एक दिन गुरुजी ने मिलारेप्पा से कहा, 'हम तुमको वहाँ कुटिया नहीं बनाने देंगे, वहाँ पर भी तुम बदमाशी करोगे। चलो! सब पत्थर वापिस अपनी जगह पर नीचे पहुँचा दो।' आज का चेला होता तो कहता, 'गुरुजी सनकी हो गये हैं', मगर मिलारेप्पा पत्थरों को छः महीने तक वापिस ढोते रहा।

एक दिन वह पत्थर संभाल नहीं सका। पत्थर लुढ़कते-लुढ़कते नीचे घाटी के अन्तःगर्भ में जाकर समा गया। मिलारेप्पा दूसरा पत्थर लेने वापिस पहुँचा तो गुरुजी आ धमके। कहने लगे, 'ऐ, वापिस कहाँ जा रहा है?' उत्तर मिला, 'गुरुजी, पत्थर लेने जा रहा हूँ।' गुरु ने पूछा, 'वह पत्थर कहाँ गया?' 'गुरुजी, ठोकर लग गई और पत्थर नीचे गिर गया।' इतना सुनते ही गुरुजी ने मिलारेप्पा को लात मारी और कहा, 'तू क्यों नहीं गिर गया?' और मिलारेप्पा को भयंकर घाटी में फेंक दिया।

आगे की बात मिलारेप्पा ने अपने शब्दों में कही है। उसने लिखा है कि जिस वक्त गुरुजी ने मेरे को लात मारी और मैं घाटी में नीचे गिरता जा रहा था, तब भी मेरे को एक चीज ख्याल में आ रही थी। यही कि मैं संतुलित हूँ। मेरे अन्दर अपने गुरु के प्रति कोई म्लान भाव नहीं है, द्वेष भाव नहीं है। मैं शान्त हूँ, मुझे गुरु का कर्म महिमा, अनुग्रह और कृपा के रूप में अनुभव हो रहा है।

ऐसा सोचते ही उसका शरीर हल्का होकर ऊपर उठने लगा। जैसे रूई हल्की होती है, जिस प्रकार पक्षी हल्का होता है, जिस प्रकार पैराशूट ऊपर से गिरने के बाद थोड़ी देर में हवा में तैरने लगता है, उसी प्रकार मिलारेप्पा फूल की तरह ऊपर उठता गया, जिसको भूमि-त्याग की सिद्धि कहते हैं, और वहीं पहुँच गया जहाँ से गुरु ने उसे फेंक दिया था। गुरुजी वहीं खड़े थे। तो क्या किया गुरु ने? मिलारेप्पा का पैर पकड़ लिया और यह कहकर खुद घाटी मे कूद पड़े, 'मिलारेप्पा, अब मैं तेरे में आ गया!'

ऐसा चेला मिलना बहुत मुश्किल है। मिलारेप्पा के गुरुजी कोई बहुत बड़े सिद्ध नहीं थे। चौरासी सिद्धों में उनकी गिनती नहीं है। वह तो चेला की वजह से गुरुजी मशहूर हो गए। हमारे यहाँ जो चौरासी सिद्धों और नौ नाथों की परम्परा है, उसमें मिलारेप्पा के गुरु का नाम नहीं, बल्कि खुद मिलारेप्पा का नाम आता है। उसकी वजह से गुरुजी को पद मिला। गुरु सिद्ध नहीं था, चेला सिद्ध था।

तुम्हें सिद्ध चेला बनना है कि सिद्ध गुरु बनाना है, गुरु-पूजा के दिन तुमको यही सीखना है। सब लोग अपनी गलती को छिपाने के लिये कहते हैं कि गुरुजी पक्का चाहिये। अरे! कम-से-कम यह भी तो कहो कि चेला भी पक्का चाहिये। बेटा कहता है कि बाप अच्छा होना चाहिये, और बाप कहता है कि बेटा अच्छा होना चाहिये, और दोनों में फिर अनबन होती है। गुरुजी कहते हैं कि चेला सात्त्विक, ज्ञानवान्, सदाचारी और आज्ञाकारी होना चाहिये, तथा चेला कहता है कि गुरुजी सदाचारी, परोपकारी, अपरिग्रही, अहिंसक और ब्रह्मचारी होने चाहिये। दोनों के दोनों फेल हो जाते हैं। गुरु और शिष्यों के सम्बन्ध में जो नैराश्य आता है, उसका प्रमुख कारण यही है कि दोनों एक-दूसरे से बहुत अधिक आशा करते हैं। कोई अपनी तरफ नहीं देखता। गुरु को शिष्य के दोष नहीं देखने चाहिये और शिष्य को गुरु के दोष नहीं देखने चाहिये। हम लोगों के आध्यात्मिक मार्ग में यही सबसे बड़ी गलती है।

एक और गलती भी है। शिष्य लोग जीवनमुक्त गुरु की खोज में रहते हैं, किन्तु याद रखना कि जीवनमुक्त गुरु अपनी उच्च अवस्था में रहने के कारण शिष्य को क्षण-प्रतिक्षण मार्गदर्शन नहीं दे सकता। अत: जीवनमुक्त गुरु की नहीं, बल्कि साधक गुरु की आवश्यकता है। जैसे करोड़पति व्यक्ति मनी-ऑर्डर नहीं बाँटता, साधारण स्थिति का व्यक्ति ही उसे बाँटेगा, वैसे ही केवल साधक-गुरु शिष्य को साधना में आगे बढ़ा सकता है।

– गुरु पूर्णिमा, 18 जुलाई 1970, मुंगेर

संसार से सार की ओर

कभी-कभी जीव सोता है, कभी-कभी वह हड़बड़ा कर उठने और चलने लगता है। यह तब और अब का क्रम रहा। पहले जीव ने उस तत्त्व को दूर से देखा और सराहा, फिर उसने तत्त्व का चिंतन किया। इसी बीच नींद आ गयी थी। पुन: वह उठा तो उसने तत्त्व को नहीं पाया, न ही ध्याया।

फिर एक बार किसी दिन उसने तत्त्व को दूर से देखा और सराहा और उसका चिन्तन किया। तत्त्व ने जीव को सजीव बना दिया था और अब जीव उसे पाए बिना नहीं रह सकता।

गुरु ने शिष्य को चलने के लिए कहा था। शिष्य ने 'आऊँगा' कहकर गुरु को आगे भेज दिया और स्वयं बैठा रहा, बैठे हुओं के साथ रमता रहा। गुरु ने बहुत दूर जाकर प्रतीक्षा की, शिष्य न आया। वह दूसरे मार्ग पर चला गया था।

रात हो गयी, सबेरा हुआ, गुरु वापस। वहाँ देखा, चेला न था। खोजा बहुत। अनेक में खोजा, अनेकों-अनेकों में खोजा, चेला न मिला।

जब सूर्य ऊपर चढ़ चुका था तो सहसा ही चेला पकड़ में आ गया। पर वह हाव-भाव, वेश और नाम सब बदल चुका था। संग बदल चुका था, रंग बदल चुका था, ढंग बदल चुके थे और अंग बदल चुके थे। गुरु ने पहचाना भी, पर कहता तो क्या। परदेश तो गुरु के विभाग से बाहर की चीज थी। गुरु को उसने नहीं पहचाना क्योंकि चेले का पथ दूसरा, शपथ दूसरी, रथ दूसरा और दिन भी दूसरा।

गुरु ने तत्त्व के गीत गाए, चेला ठेला गया। गुरु ने सत्य को जगाया, चेला और ठेला गया। और कुछ याद आया, उस मार्ग का नजारा झलका। एक स्वप्न-सा आया और गया। पता नहीं कौन कहेगा, चेला समझा कि नहीं।

यह मार्ग संसार है, वह मार्ग सार है। यह अनित्य है, वह नित्य है। यह असत्य है, वह सत्य है। परन्तु असत्य से सत्य के पथ पर आने के लिये कुछ दूर असत्य पथ से ही वापस चलना होगा और असार से सार पर पहुँचने के लिए कुछ दूर असार पर ही चलना होगा। क्योंकि भटके हुए को सही मार्ग पर आने के पहले कुछ काल तक विमार्ग से ही वापस आना पड़ता है। यही मैं कहता हूँ कि वहाँ पहुँचने के लिये यहाँ भी चलना होगा। यह भी कहता हूँ कि आगे नहीं, पीछे की ओर लौटो।

चेला थका है। सत्य की ओर चलने की उत्कट अभिलाषा होने पर भी बार-बार बैठ जाता है। परन्तु मैं कहता हूँ, 'बेटा, बैठा भी कर और चला भी कर, किन्तु हार मत।' यही मैं कहता हूँ कि 'चाहे इस मार्ग पर चल या उस मार्ग पर, चलना तो पड़ेगा ही, थकना तो होगा ही। परन्तु इसमें आगे अन्धकार है तो वहाँ से तू लौटेगा ही। परन्तु उसमें सुपथ है, मार्ग सनाथ है, आश्रय है, उपाश्रय है, छाया है। चल भी, बैठ भी। पर हार मत, मैं साथ में हूँ।'

चेला डरा है, वापसी मार्ग में जन्तुओं के भय से। गुरु कहता है, 'डर मत, वे सब तेरे मित्र हैं। साथ रहेगा तो वे तुझे स्पर्श भी नहीं करेंगे। गरजने वाला गरजेगा, हँसने वाला हँसेगा, उड़ने वाला उड़ेगा, तू सब सुनेगा और देखेगा, पर मेरे रहते तुझे कोई छुएगा भी नहीं।'

बस दोनों में यहीं तक बातें हो रही हैं। इस पथ पर, उस पथ के लिये दोंनो चल रहे हैं। देखें, कब तक पहुँचना होता है . . .

– गुरु पूर्णिमा, 15 जुलाई 1973, मुंगेर

गुरु पूर्णिमा का महत्त्व

गुरु सिर्फ भारतीय हिन्दू धर्म का तत्त्व नहीं है और न ही वैदिक परम्परा का तत्त्व है, बल्कि संसार में जहाँ-जहाँ आध्यात्मिक जीवन और ज्ञान की खोज हुई, वहाँ गुरु परम्परा और गुरु सम्प्रदाय का जन्म हुआ है। आज से नहीं, बल्कि लम्बे समय से, ऐसा इतिहास कहता है। दुनिया के कोने-कोने में जहाँ-जहाँ मुझे जाने का मौका मिला है, वहाँ गुरु-शिष्य परम्परा का एक नया स्वरूप देखने को मिला। वैसे तो मैं अपने सारे अनुभव इस थोड़े समय में नहीं बतला सकता हूँ, परन्तु एक अनुभव मैं आप लोगों को अवश्य बतलाऊँगा।

मैं दक्षिण अमेरिका जाता था, जहाँ मात्र स्पेनिश भाषा बोली जाती है, वहाँ के लोग अँग्रेजी नहीं जानते। वहाँ मैं जब भी लोगों के सम्पर्क में आता, वे लोग मेरा अँगूठा चूमते थे या कपड़ा सूँघते थे। उनसे मैंने पूछा कि यह सब तुम क्यों करते हो, तो उन्होंने बिल्कुल वही बात कही जो हमारे भारत में कही जाती है। मेरा कहने का अर्थ यह है कि आज हम जिस श्रद्धा और भक्ति को लेकर यहाँ बैठे हुए हैं, वह विश्व परम्परा का एक अंग है। कोई भी धर्म या मजहब दुनिया में ऐसा नहीं है, जहाँ गुरु-शिष्य सम्बन्ध को लोगों ने

स्वीकार न किया हो। सभी धार्मिक ग्रंथों में लिखा है कि ईश्वर और तुम्हारे बीच मैं सूत्र हूँ, मैं रास्ता हूँ। मैं याने गुरु, मगर यह जल्दी समझ में नहीं आता है। हाँ, जो वास्तविक रूप से साधना करते हैं और यह जानते हैं कि बाहर की दुनिया के अलावा भी एक और दुनिया अंदर है, वे गुरु की आवश्यकता को समझते हैं।

बाहर की दुनिया का, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का हम ज्ञानेन्द्रियों से अनुभव करते हैं। इसके अलावा एक और लोक है, एक बहुत बड़ा संसार है, बहुत बड़ा अस्तित्व है, जिसके रहस्य को खोजने के लिए कई साधक व्याकुल हैं। ऐसे लोग साधना करते-करते एक जगह पर पहुँच जाते हैं और गुरु उनकी साधना की कठिनाइयों का समाधान करते हैं। गुरु का स्थान अध्यात्म मार्ग में ही नहीं बल्कि लौकिक विज्ञान में भी निश्चित है।

जिस गुरु-शिष्य परम्परा को आज हम स्वीकार कर रहे हैं यह एक अन्तरराष्ट्रीय संस्कृति है और समाज, विश्व तथा भावी पीढ़ियों के विकास में इस परम्परा का बहुत बड़ा योगदान रहेगा। हम किसी काबिल नहीं थे, गुरु ने हमारा मस्तक भी नहीं छुआ, केवल दूर से ही देख लिया तो सब कुछ बदल गया। और यह तब हुआ जब हमने अपने गुरु को पहचाना भी नहीं था। हमारे गुरु स्वामी शिवानन्द जी थे। जब हमने उनको पहचाना भी नहीं था तब उन्होंने हमारे ऊपर जादू कर दिया!

अगर इस बात को ध्यान से समझा जाय तो स्पष्ट हो जाएगा कि जीवन में एक तो गुरु का आशीर्वाद साथ देता है और दूसरी अपनी श्रद्धा। यदि शिष्य में श्रद्धा है और गुरु बहुत महान् नहीं भी है तो भी काम चल जायेगा। यदि शिष्य साधारण भी रहा और गुरुजी का अनुग्रह रहा तो शिष्य को मार्ग मिल जायेगा। यदि हमें गुरु के अनुग्रह की प्राप्ति करनी है तो अपनी श्रद्धा का विकास करना होगा। श्रद्धा यदि कुण्ठित हो जाती है तो सब कुछ कुण्ठित हो जाता है। श्रद्धा साधक का जीवन है। श्रद्धा के बल पर ही साधना की जाती है।

हम चाहते हैं कि गुरु पूर्णिमा साल में एक बार नहीं, तीन बार मनानी चाहिए। बरसात में बड़ी तकलीफ हो जाती है, इसलिए एक होनी चाहिए बैसाख या बुद्ध पूर्णिमा, भगवान बुद्ध का जन्म दिन, दूसरी होनी चाहिए व्यास पूर्णिमा जो गुरु पूर्णिमा कहलाती है और तीसरी कार्तिक में होनी चाहिए। तीनों पूर्णिमाओं को गुरु पूर्णिमा का कार्यक्रम मनाना चाहिए। अगले साल पूर्णिमा तीन जगह मनायी जाएगी। एक होगी उत्तर में, दूसरी दक्षिण में और

तीसरी पश्चिम में। उससे गुरु और शिष्य साल में तीन बार एक जगह एकत्रित होंगे, इससे बढ़कर आनन्द क्या होगा!

तुमने स्वामी विवेकानन्द और उनके गुरु, रामकृष्ण परमहंस के सम्बन्ध के बारे में पढ़ा है, अनेकों महात्माओं और उनके शिष्यों के सम्बन्धों के बारे में पढ़ा है। यह प्रेम, वात्सल्य या स्नेह का सम्बन्ध नहीं है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध एक ऐसा सम्बन्ध है जिसके बारे में कहीं पर भी आज तक कुछ निर्धारण नहीं किया गया। गुरु व शिष्य के बारे में जो भाव-धारा है उसका आखिर नाम क्या है? पति-पत्नी के बीच में, माता-पुत्र के बीच में, मित्रों के बीच में या मित्र और शत्रु के बीच में जो भाव-धारा चलती है उसका एक नाम है। भक्त और भगवान के बीच में जो भाव-धारा है उसका भी नाम है, लेकिन गुरु और शिष्य के बीच में जो भाव-धारा चलती है उसका नाम बतलाओ? गुरु और शिष्य का सम्बन्ध एक ऐसा सम्बन्ध है जो प्राणमय कोश में नहीं होता, मनोमय कोश में नहीं होता, सीधा आनंदमय कोष में आत्मा के स्तर पर होता है।

– गुरु पूर्णिमा, 11 जुलाई 1976, रायगढ़

शिष्य पूर्णिमा

आज गुरु पूर्णिमा नहीं, 'शिष्य पूर्णिमा' है। गुरु की पूर्णिमा तो कभी की हो चुकी है। पूर्णिमा का मतलब होता है, पूर्ण प्रकाश। जो प्रकाशित हो गया तथा जो प्रकाशित करे, वह गुरु है, और जो प्रकाशित होना चाहता है उसे शिष्य कहते हैं। इसलिए आज का दिन शिष्य पूर्णिमा का दिन है, भले ही आप लोग उसे गुरु पूर्णिमा का दिन कहते हैं।

दुनियाभर में हमलोगों ने गुरु पूर्णिमा को मनाने का कार्यक्रम वर्षों से रखा है। भारत में ही नहीं, बल्कि भारत के बाहर भी यह मनाई जाती है। ऑस्ट्रेलिया में दो साल पहले गुरु पूर्णिमा मनाई गई, तो हजारों लोग आए, और हम सबेरे से लेकर शाम तक नाश्ता-पानी या भोजन किये बिना बैठे रह गए। इन लोगों में सीधा-सादा हिसाब होता है, बस एक गुलाब का फूल और दस डालर का नोट। टीका लगाने का रिवाज नहीं। असल में टीका तो हमें आपको लगाना चाहिए कि यह जगह ध्यान के लिए उपयुक्त है। अब तो आप हमको टीका लगाते हैं कि हम कहाँ ध्यान करें! गुरु लगाता है 'टीका' और चेला देता है 'दक्षिणा'।

प्रकाश, शान्ति और शक्ति की ओर

दुनिया में आज बहुत संकट फैला लगता है। चारों तरफ तनाव है, चारों तरफ युद्ध की विभीषिका है, षड्यन्त्र और अनाचार-सा मालूम पड़ता है। अब

ऐसी स्थिति में दुनिया के सामने क्या उपाय है? हम लोगों के ऋषि-मुनियों ने एक उपाय दुनिया को बतलाया और इसके लिए यह गुरु-शिष्य की परम्परा दुनिया में चारों तरफ फैलेगी। जिस तरह से दुनिया में बाप-बेटा या पति-पत्नी का सम्बन्ध होता है, उसी तरह से गुरु और शिष्य का पवित्र, आध्यात्मिक सम्बन्ध होता है। जब तक गुरु और शिष्य के बीच आध्यात्मिक सम्बन्ध कायम नहीं होता, तब तक मन के अन्दर आध्यात्मिक अशान्ति रहती है। जब हम साधना में दीक्षित हो जाते हैं, तब जाकर यह आध्यात्मिक अशान्ति दूर होती है। इसीलिए गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को प्रत्येक व्यक्ति को समझ लेना चाहिए। हम सबके अन्दर अंधकार है। अंधकार नहीं होता तो हम भटकते नहीं, दु:खी नहीं होते। उस अंधकार को दूर करने के लिए हमारे अन्दर एक प्रेरक शक्ति का होना जरूरी है, और यही गुरु तत्त्व है।

साल में एक बार हम यहाँ मिल रहे हैं, और अगले साल फिर कहीं मिलेंगे। हमलोगों का यह आध्यात्मिक परिवार विशाल होना चाहिए, क्योंकि इससे हमारा सामाजिक, पारिवारिक और राष्ट्रीय जीवन सुखी रहेगा। जिन लोगों को यहाँ आने का मौका नहीं मिला, उन लोगों को भी हम शुभकामना, शुभाशीर्वाद भेजते हैं। जब हम एक साथ बैठकर अपने अन्दर चिन्तन और संकल्प करते हैं तो यह संकल्प आकाश को चीरता हुआ रेडिया तरंगों से भी कुछ गुना बढ़कर दूर-दूर के देशों में जा सकता है। मनुष्य के अन्दर जो संकल्प-शक्ति, भावना-शक्ति, आध्यात्मिक-शक्ति है वह इतनी प्रबल, वेगवती और सामर्थ्यशाली है कि तुम अपनी भावनाओं को देश-काल के परे भेज सकते हो। किन्तु इसके लिए साधना और अभ्यास की जरूरत है। हमलोगों ने अपने को कमजोर बनाया है, वास्तव में हम कमजोर नहीं हैं। न हम शरीर से, न मन से और न ही आत्मा से कमजोर हैं। हम लोग कमजोर हैं ही नहीं। मगर हुआ क्या है, हम लोग कमजोर होने का स्वांग रच रहे हैं।

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, बच्चा हो या बच्ची, विवाहित हो या अविवाहित, सज्जन हो या दुर्जन, वैश्य हो या शूद्र, क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, हिन्दू हो या मुसलमान हो या ईसाई हो – सब एक हैं। भेद तो दुनिया और समाज ने बनाया है, राजाओं और नेताओं ने बनाया है। धर्म में, अध्यात्म में और पूर्वजों की किताबों में भेद नहीं है। जाति का भेद नहीं है, धर्म का भेद नहीं है और शरीर का भी भेद नहीं है। इसका मतलब हम सब लोग एक रूप हैं। चाहे पेड़ा हो, बर्फी हो, कलाकन्द हो, दूध, दही, मक्खन या घी हो, सबका

मूल एक है। उसी तरह से सभी प्राणियों का मूल एक है और सब प्राणियों का स्वरूप भी एक है। वह स्वरूप क्या है? उसका नाम है आत्म-शक्ति। वह अपने अन्दर सोई हुई है। उस सोई हुई शक्ति को, विभूति को कैसे जगाना – केवल इसी को अपने जीवन में एक बार सोचो। पैसा तो ठहर कर आएगा, सम्पत्ति तो खिसक-खिसक कर आएगी, बेटा-बेटी का कुशल-मंगल तो अपने आप आएगा, किसी को पूछने की भी जरूरत नहीं है। केवल एक चीज का ख्याल रखना कि उस सोई हुई शक्ति को कैसे जगायें, बस। उसी को जगाने की बात आज कर रहे हैं और इसीलिए गुरु पूर्णिमा हो रही है।

यहाँ कोई मेला या तमाशा नहीं है। यहाँ हम लोग केवल एक चीज को लेने, एक चीज को याद करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। भूलना नहीं इस बात को। यहाँ कोई प्रवचन या लेक्चरबाजी करने हम इकट्ठे नहीं हुए हैं। यहाँ मनोरंजन भी नहीं है। जैसे जामवन्तजी ने हनुमानजी को उनकी सच्ची शक्ति का स्मरण दिलाया तो हनुमानजी का शरीर विशाल हो गया, उसी प्रकार हम हो गए जामवन्त और तुम हो गए हनुमान। फर्क इतना ही है कि अभी तुम लोगों की पूँछ में आग लगी नहीं है।

आत्मज्ञान

पूँछ है मूलाधार चक्र। इसमें आग लगती है तो उस आग से सारी लंका जल उठती है। लंका है सोने की और रावण उसका राजा है। उसी प्रकार यह देह भी सोने की लंका है। कुंभकरण यहाँ सोता है, मेघनाद यहाँ है, शूर्पणखा भी यहीं है। सब तो यहीं हैं। हम यहाँ याद दिलाने आए हैं कि तुम मनुष्य शरीर नहीं हो, तुम मनुष्य शरीर को धारण करने वाले हो। तुम स्त्री या पुरुष नहीं हो, स्त्री और पुरुष का स्वांग करने वाली आत्म-चेतना हो। तुम हिन्दू, मुसलमान, चमार या राजपूत नहीं हो, तुम अज्ञान के कारण अपने ऊपर ठप्पे लगाकर रखे हुए हो। माया की वजह से मूर्ख की तरह अपने को अलग रखे हो। जब तुम शरीर नहीं हो, जाति नहीं हो, नाम नहीं हो तो आखिर तुम हो कौन? बस, अब एक प्रश्न उठा – मैं कौन हूँ? इस प्रश्न का उत्तर एक दिन में मिलने वाला नहीं। रामायण, गीता या उपनिषद् से भी इसका उत्तर मिलने वाला नहीं।

इसका उत्तर तुम्हारे अन्दर एक अनुभव के रूप में मिलेगा। शुरू-शुरू में कहोगे, 'अमर आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ', मगर ये सब बौद्धिक बातें हैं। तुम आत्मा को समझे हो क्या? कुछ तो नहीं समझे हो। भैंस के आगे बीन

बजावे खड़ी भैंस पगुराय – बीन बज रही है और भैंस को कुछ समझ में नहीं आ रहा है। यह और कुछ नहीं, दिमाग का फेर है। ऐसा करो कि सचमुच में अपने अंदर का पता लगे, तुम अनुभव करो। ज्ञान एक चीज है, और अनुभव दूसरी चीज। बुद्धि के द्वारा, शास्त्र के द्वारा, कथा के द्वारा और बुजुर्ग लोगों के साथ बैठकर ज्ञान प्राप्त होता है, परन्तु अनुभव कहीं भी प्राप्त नहीं होता, वह तुम्हारे अंदर ही उत्पन्न होता है। जिस तरह पखाना से अपने आप बैक्टीरिया पैदा होता है, कहीं बाहर से से तो पैदा नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त होने के बाद अनुभव मनुष्य के अंदर अपने आप पैदा होता है। जब यह अनुभूति होती है, तो उसको कहते हैं कुण्डलिनी की जागृति, आत्म-ज्ञान, ईश्वर-दर्शन या समाधि। सब एक ही चीज है, केवल नाम अलग-अलग हैं।

आज मैं यहाँ जो बातें बता रहा हूँ, केवल इसलिए नहीं कि तुम सिर्फ सुनो और मैं बोलूँ। मुझे लगता है कि हिन्दुस्तान के सब लोग नपुंसक हो गये हैं। इन लोगों को ऐसा लगता है कि सब कागज का खेल है, सब ताकत डिग्री में है। अगर एम.ए. नहीं होंगे तो शादी कैसे होगी? इंजीनियर नहीं बने तो समाज में हमारी इज्जत कैसे होगी? जिस प्रकार सबल आदमी अपने बाजुओं पर भरोसा करता है, उसी प्रकार जब तुम्हारे पास आत्म-शक्ति होगी, तब तुम केवल अपनी सम्पत्ति या डिग्री पर निर्भर नहीं रहोगे। इसके लिए साधना का कार्यक्रम अपने घर में बनाना होगा। अपने बच्चों को कराओ, डरना नहीं। लोग सोचते हैं कि पूजा-पाठ करेगा तो साधु हो जाएगा। अरे! अच्छा ही तो होगा।

तुम लोग घर में एक-दो घंटा समय निकालो। ध्यान की साधना करनी हो तो ध्यान करो, जप या क्रिया योग की साधना करनी हो तो वह करो, आसन-प्राणायाम करना हो तो उसे करो, जो भी साधना करनी हो उसे करो, लेकिन नियमित रूप से करो। फिर एक, दो या तीन साल में अपने आप अंदर से शक्ति की जागृति होगी और उस शक्ति के जागने के बाद तुम्हारा जीवन और ऊँचा उठेगा।

अंत में बता दूँ कि पूजा-पाठ और योग साधना का लक्ष्य कर्म और कर्त्तव्य का त्याग नहीं, सांसारिक भोग और सुख का त्याग नहीं, वरन् इसका लक्ष्य मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि और इन सब के पीछे जो एक बड़ी शक्ति है, उसको जागृत करना है। वह जाग जायेगी तो तुम भरपूर हो जाओगे और फिर तुम्हारे लिए कुछ अन्य चीज पाना शेष नहीं रह जायेगा।

– गुरु पूर्णिमा, 9 जुलाई 1979, बिलासपुर

साधना का कर्णधार

गुरु पूर्णिमा हरेक शिष्य की अपने-अपने गुरु के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति का दिन है। प्राचीन-काल में भारतीय अध्यात्म परम्परा के अन्तर्गत एक ऐसे संगम की स्थापना हुई, जहाँ इस देश के अनेक विचार, अनेक पंथ, अनेक दर्शन तथा अनेकानेक परम्परायें एक जगह पर मिलती थीं। परम्परानुसार शिष्यगण अपने-अपने गुरुओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिये गुरु पूर्णिमा के दिन एक जगह पर एकत्रित होते थे। इसलिये आप यह नहीं मानना कि हम केवल अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की पुण्य-स्मृति में ही प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा मनाते हैं। जहाँ-जहाँ भी गुरु पूर्णिमा मनायी जायेगी, प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी चेतना को गुरु का अधिष्ठान, गुरु का आधार लेकर व्यक्त करता है। अत: आज का यह दिन प्रत्येक शिष्य के लिये परम हर्ष का दिन है।

गुरु की आवश्यकता

हमें बचपन में अनेक विचारकों के विचार पढ़ने को मिले हैं। पाश्चात्य विचारधारा तथा भारतीय विचारधारा में भी अनेक ऐसी मान्यतायें फैली हैं, जो

गुरु की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करतीं। हमारे अनेक मनीषी, चिन्तक एवं विचारक हैं, जो गुरु की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करते। उसमें बुरा मानने की बात नहीं है, समझने भर की देर है। गुरु एक बाह्य आधार है, जो प्रत्येक साधक के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

हमारा मन बड़ा चंचल है। यह बिल्कुल पानी की तरह बहता है और हवा की तरह उड़ता है। समुद्र की लहरों के समान इसमें भी विचार तरंगों का निरन्तर सृजन होता रहता है। इसमें नाम-मात्र के लिये भी स्थिरता का आभास नहीं मिलता। यह निश्चित रूप से क्षत-विक्षत है, अस्त-व्यस्त है। यह सबका अनुभव है, चाहे वह धनवान् हो, त्यागवान् हो, बुद्धिमान हो, उच्चकोटि का विद्वान् हो अथवा परम ज्ञानी हो। मन, चेतना या चित्त, जो कुछ हमारे अन्दर है, जो निरन्तर गतिमान है, उसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं। यह एक अद्भुत शक्ति है, जो बराबर बहती जा रही है। उसका हमारे जीवन में कोई सदुपयोग नहीं हो रहा है, उसका दुरुपयोग ही हो रहा है। इसलिये इतस्तत: बहती हुई इस चित्तशक्ति की उपयोगिता को जानने के लिये हमें इसे एकाग्र करना होगा। कैसे? किसी आधार के द्वारा। इसलिए किसी आधार का होना परमावश्यक है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हमारे देश में प्रतीकोपासना का शुभारम्भ हुआ।

प्रतीकोपासना की शुरुआत ही वहीं से होती है, जहाँ से चित्त को स्थिर करने की जिज्ञासा हुई। ब्रह्म निर्गुण है, चेतना निर्गुण है, आत्मा निर्गुण है, ईश्वर निर्गुण है, यह पक्की बात है, किन्तु निर्गुण को भी अनुभवगत करने के लिये कुछ तो करना होगा। यदि आपको इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा हो तो आप एक माह तक अन्तर्मौन का अभ्यास कर इसका अनुभव कर सकते हैं। आप अन्तर्मौन की स्थिति में स्वयं से पूछिये कि मेरा मन क्या सोच रहा है, कहाँ जा रहा है? पहले दिन आपको कुछ लगेगा नहीं, मगर एक सप्ताह बाद आपको लगेगा मानो आप पिशाचों की सभा में बैठे हुए हैं। अन्तर्मन की स्थिति में इतनी अजीब अनुभूति होती है कि कभी-कभी आदमी त्रस्त हो जाता है। एक विचार एक ओर से आता है, तो दूसरा विचार दूसरी ओर। लगता है, मानो दिल्ली के चाँदनी चौक में ट्रॉफिक जाम हो रहा हो। चेतना का स्वरूप ही विचित्र है। वह केवल प्रतीकात्मक रूप में ही नहीं आती, वह विचित्र अनुभवों के रूप में भी आती है। अनेक तरंगों और अनेक रंगों के रूप में भी आती है।

यह चित्त निरन्तर चलायमान, विक्षिप्त और उत्तेजित है। इसलिये मनुष्य दु:खी है। गरीबी, बेकारी, बीमारी, अपनी जगह पर ठीक हैं, पर वे सच में दु:ख के कारण नहीं हैं। हम तुमको बतला देते हैं, हमने गरीबी झेली है। हम दलिया खाकर 18 घंटे काम करते रहे हैं और फटी धोती में 6 साल बिताये हैं, मगर हमने उसे दु:ख कभी नहीं माना। वस्तुत: दु:ख का मूल कारण है चित्तशक्ति का उद्वेलित हो जाना। मनुष्य इसको पहचान नहीं पा रहा है। अब इसको पहचानने की कला सिखलाने वालों की कमी है ही, सीखने वालों का तो एकदम अकाल पड़ गया है।

अब एक ही चीज हमें देखनी है, एक ही चीज को हमें पकड़ना है – इस अव्यवस्थित चित्त को शान्त कैसे करना है। इसके लिये हमारे यहाँ एक प्राचीन परम्परा चली है। कब से? वैदिक काल से। तब से आज तक किसी ने कहा – आँख बन्द करो, किसी ने कहा – कान बन्द करो, किसी ने कहा – मुँह बन्द करो और किसी ने कहा – इड़ा और पिंगला को समान करो, मणिपुर चक्र की शक्ति को जागृत करो, मूलाधार चक्र की शक्ति को जगाओ। किसी ने कहा – ये सब फालतू बातें हैं, केवल 'श्री राम जय राम जय जय राम' कहो।

इस प्रकार हमारे यहाँ सैकड़ों पंथ हो गये। धर्म, मत, सम्प्रदाय – चीज एक ही है, मगर लोग इनकी अलग-अलग कुटिया बनाकर बैठ गये। इसी प्रकार कभी किसी चेला को गुरु पसन्द नहीं आया, तो कभी किसी गुरु को चेला पसन्द नहीं आया। एक गुरु को लगा कि शिष्य को केवल भस्त्रिका बतलावें, तो दूसरे गुरु को लगा कि केवल अजपाजप बतलावें। किसी ने ताड़न-क्रिया सिखलाई, तो किसी ने क्रियायोग की शिक्षा दी। जहाँ तक साधना का प्रश्न है, इसमें गलती किसी की नहीं है, न गुरु की और न ही चेले की। परन्तु जहाँ तक आलोचना का प्रश्न है, वहाँ गलती तुम्हारी भी है और हमारी भी है। हमने कहा हमारा पंथ श्रेष्ठ है और आपने कहा हमारा पंथ श्रेष्ठ है, मगर हमने एक-दूसरे को पूरक कभी नहीं माना और इसी प्रकार हमारे धर्म, मत और सम्प्रदाय बहुत हो गये। लेकिन इन सभी परम्पराओं के होने के बावजूद भी किसी ने गुरु की अवहेलना नहीं की। सभी ने उसे स्वीकारा है। वस्तुत: गुरु सर्वमान्य है, मगर उसकी परम्परा को कहीं-कहीं विकृत कर दिया गया है।

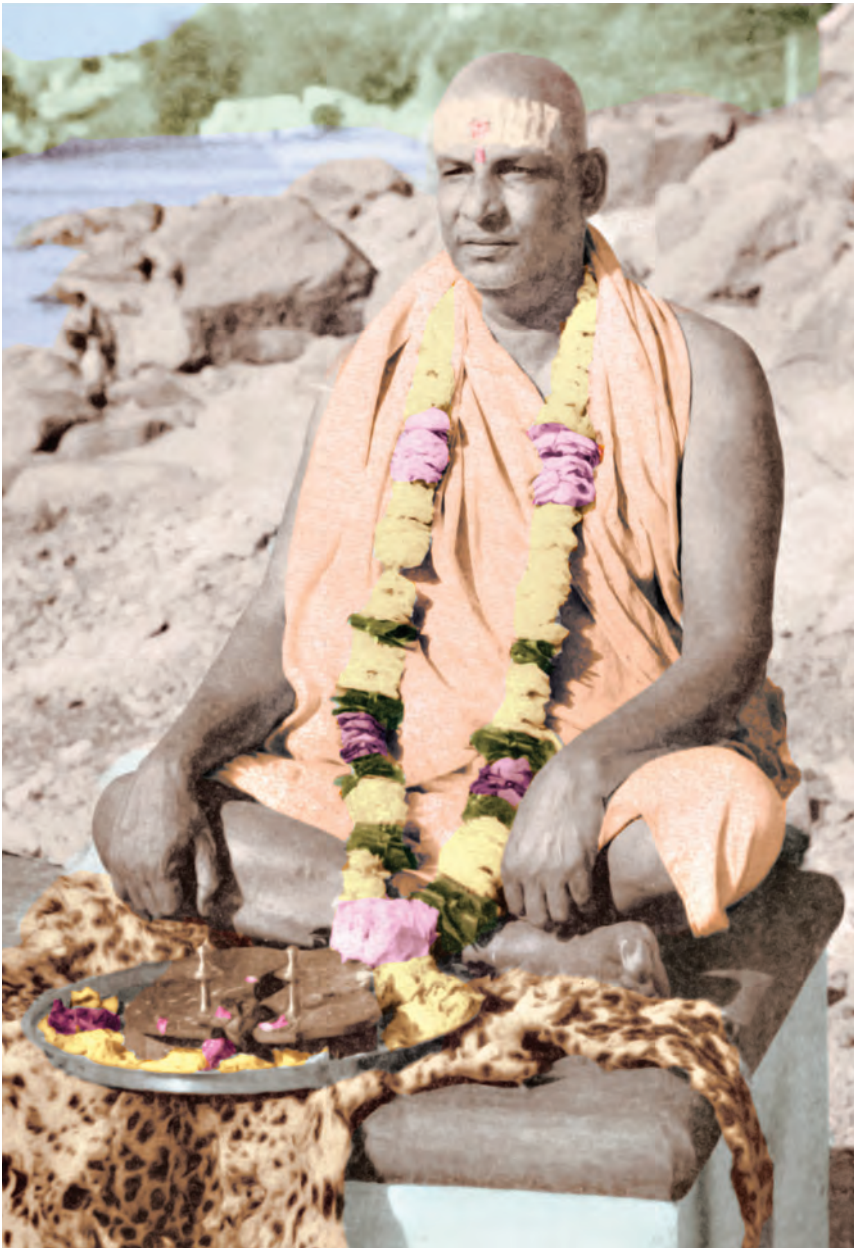

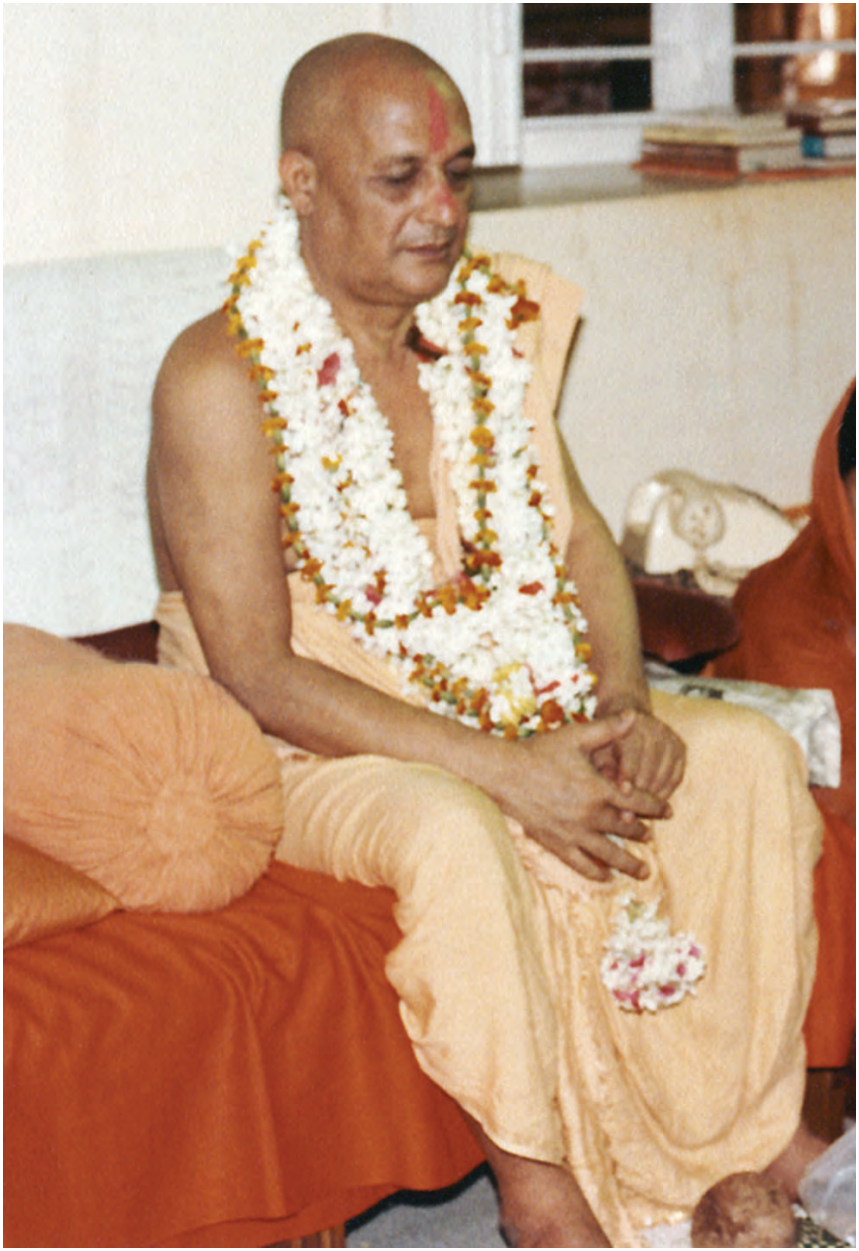

अन्धकार से प्रकाश की ओर

भारत में प्राचीन काल से आज तक एक महान् एवं महत्त्वपूर्ण परम्परा कायम रही है। इस सन्दर्भ में हमारे ग्रन्थों में आता है –

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्र पराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्॥
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि॥

यह उन लोगों की गुरु परम्परा है जिन्होंने एक अद्वैत चेतना की समष्टि को स्वीकारते हुए भी साधना के पक्ष में गुरु को प्रतीक बनाया। क्यों? इसलिये कि जब साधक साधना की उच्च अवस्था में चेतना की गहराई में उतरता है, उस समय उसे एक आधार की आवश्यकता होती है। जब साधक ध्यान की अवस्था में अन्दर जाता है, अपने सूक्ष्म में उतरता है, और वह किसी प्रतीक पर एकाग्र होता है, तब वह सजग रहता है। अन्यथा वह निद्रा एवं स्वप्न में चला जाता है। ध्यान की अवस्था में वह सजग रहता है, परन्तु निद्रा एवं स्वप्न में वह सजग नहीं रह पाता, क्योंकि वहाँ अज्ञान रहता है। वहाँ तो हम रोज जाते हैं, मगर वहाँ हम सजग नहीं रह पाते। एक महान् ईसाई सन्त ने कहा है – 'ईश्वर की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं रोज मरता हूँ।' मतलब प्रतिदिन हम प्रलय की अवस्था को प्राप्त होते हैं और सूक्ष्म अवस्था में जाते हैं, परन्तु वहाँ प्रकाश नहीं रहता, अर्थात् वहाँ पर वस्तु आलोकित नहीं होती, अहम् आलोकित नहीं रहता और अनुभव भी आलोकित नहीं रहते। वह अज्ञान की स्थिति है। जब आप रात को सोते हैं तो चेतना कहाँ रहती है? ठीक वहीं, जहाँ ध्यान में रहती है, मगर दोनों में बहुत बड़ा फर्क है। जहाँ ध्यान और समाधि में आलोक है, वहाँ निद्रा और स्वप्न में आलोक नहीं रहता।

चेतना की एक तमोगुणमयी स्थिति है, जिसकी वजह से जीव 'मैं-तुम' को भूलकर मूढ़ता और जड़ता की स्थिति में अविद्या के पाश में बंधा हुआ सोया रहता है। उस अंधकार के निवारण में समर्थ शक्ति को गुरु के नाम से पुकारा जाता है। 'गु' शब्द का अर्थ होता है अंधकार, अविद्या या चिदाकाश का अभाव और 'रु' शब्द का अर्थ होता है प्रकाश, उस अंधकार को हटाने वाला। इसका मतलब हुआ कि वही हमारा गुरु है जो हमें अंधकार से मुक्त कर ज्ञान के चिरन्तन आलोक में प्रवेश करा दे।

आज गुरु पूर्णिमा है। इसका वास्तविक मतलब होता है कि चित्तशक्ति अपने स्टेज पर नाचते-नाचते एक चरम स्थिति तक पहुँच जाती है, और उस समय उसके भाव में, लय में, गति में एक सम्पूर्णता आ जाती है, वह पूर्णता से ओतप्रोत हो जाती है। इस समय यह इन्द्रियों के माध्यम से, इन्द्रियातीत माध्यम से और सूक्ष्म अनुभव के माध्यम से अपने को प्रकट करती हुई फैलाती जाती है, हमारे व्यक्तित्व में अपने को व्याप्त करती जाती है, शरीर, मन, बुद्धि में व्याप्त होती जाती है, उस स्थिति को पूर्णिमा कहते हैं। थोड़ा-सा पानी डाल दोगे तो ब्लॉटिंग पेपर उसे सोख लेगा, मगर बहुत अधिक पानी डाल देने पर वह स्वयं पानी से लबालब हो जायेगा। इसी प्रकार शक्ति जब इस शरीर, मन और अहंकार को अपना माध्यम बना देती है तब 'मैं' उस महान् शक्ति का एक निमित्त बन जाता हूँ। फिर मुझमें और शक्ति में कोई भिन्नता नहीं रह जाती, परन्तु यह सहज अनुभवगम्य नहीं है। इसका अनुभव सभी नहीं पा सकते। चेतना का जो तमोगुण रूप और अहंकार है, वह ध्यान करने वाले साधक को ध्यान की अवस्था में महसूस होता है। अंधकार सबमें है, मगर ध्यान करने वाले साधक को उस अंधकार का पता चलता है। वह अंधकार दूर होता है पूर्णिमा से। आप लोगों ने देखा होगा, पूर्णिमा की रात्रि को अंधकार का नामोनिशान तक नहीं होता। उसी प्रकार पूर्णचैतन्य स्थिति ही आध्यात्मिक जगत् में पूर्णिमा के नाम से विख्यात है।

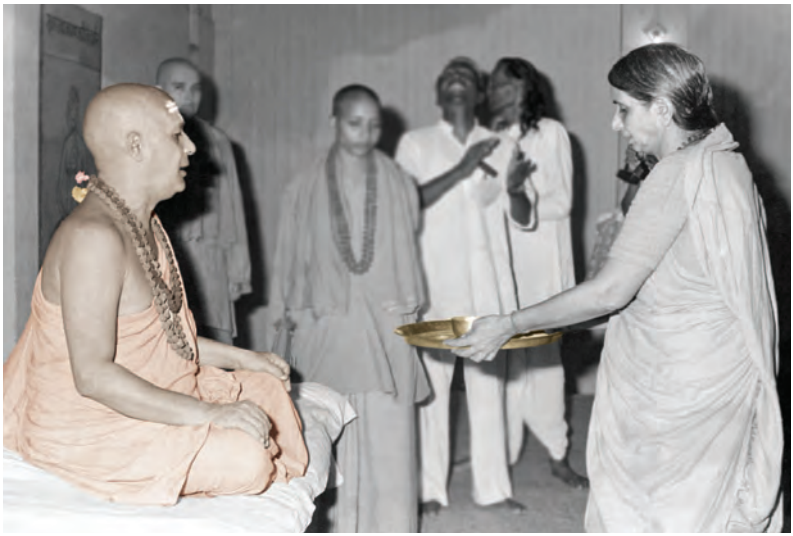

तंत्रशास्त्र में गुरु की भूमिका

आध्यात्मिक मान्यताओं के अतिरिक्त भी हमारे देश में गुरु का बहुत बड़ा महत्त्व रहा है। जिन्होंने तंत्रशास्त्र का निष्ठापूर्वक अध्ययन किया है, वे मेरी बातों को तुरन्त समझेंगे। हमारे देश में भी इस महान् विद्या का निरंतर लोप होता जा रहा है। इसका लोप उन लोगों ने कराया जो हमारे इस महान् उद्देश्य को अपूर्ण रखना चाहते थे। कुछ वर्ष पहले जब मैं अवैदिक संस्कृति वाले देशों में गया, जहाँ तंत्र शब्द को सुनते ही लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं, लोगों ने मुझसे तरह-तरह के प्रश्न पूछे। हमने उन्हें बहुत समझाया, मगर उनकी समझ में कुछ आया नहीं। यहाँ प्राचीन समय से लोग कहते-सुनते आये हैं कि '*तनोति त्रायति इति तंत्र:*' – जो चेतना को ताने और पदार्थ के बंधन से उसे मुक्त करे वह है तंत्र, मगर यह बात उन लोगों की समझ में नहीं आती है। वे लोग बोलते हैं, 'स्वामीजी, यह तानना और मुक्त करना क्या चीज है?' तब हम समझाते हैं कि यहाँ का हिसाब-किताब ही कुछ दूसरा है, मगर हम वहाँ से लौटकर जब हिन्दुस्तान आये तो यहाँ भी ठीक वही हाल देखा। लोगों में तंत्र के प्रति विचित्र प्रकार की भावनायें देखने को मिलीं। बहुत-से लोग तो तंत्र के बारे में क-ख-ग तक नहीं जानते।

तंत्रशास्त्र में भी आपको गुरु का अलग-अलग स्वरूप मिलेगा। तंत्र में कहीं पर गुरु का व्यक्तित्व शिष्य के व्यक्तित्व पर आधारित है, तो कहीं पर शिष्य का व्यक्तित्व गुरु के व्यक्तित्व पर आधारित है। दोनों में एक प्रकार की समानता होनी चाहिए, अन्यथा आगे बढ़ना संभव नहीं है। इसीलिये गुरु का स्वभाव शिष्य की हैसियत, उसके विश्वास और उसकी उपलब्धियों के अनुसार होता है। अत: सभी गुरुओं ने जो-जो उपदेश दिये हैं, वह इसलिये नहीं कि सत्य का स्वरूप भिन्न है बल्कि इसलिये कि सत्य को समझने वाले शिष्यों की बुद्धि में भिन्नता है। इसलिये तंत्र में अनेक आचार तथा सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी शिष्यों के लिये अलग-अलग साधनाएँ बतलाई गई हैं।

यहाँ हम इतने लोग बैठे हुए हैं। आप कैसे कह सकते हैं कि हम सभी सतोगुणी हैं। आप सब हमसे सतोगुणी साधना ही माँगोगे क्या? कुछ समय पहले की बात है, एक व्यापारी हमारे पास आया। वह संन्यास लेना चाहता था। हमने उससे कहा, तुम सबेरे तीन बजे से लेकर रात के आठ बजे तक शारीरिक परिश्रम करो, मगर वह माना नहीं और छिप-छिप कर साधना करने लगा। अनुष्ठान शुरू किया। उसने डेढ़ लाख जप कर लिया। फिर हुआ यह

कि उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया। वह अजीब-अजीब बातें करता था। हमने उससे कारण का पता लगाया पर उस समय हमें कुछ भी पता नहीं चला। कुछ दिन बाद मालूम पड़ा कि वह रात को बिस्तर पर मच्छरदानी के अन्दर अपनी साधना किया करता है।

हमने उसे बुलवाया और कहा, 'देखो, कृपा करके माला हमको दे दो। आज से तुम हमेशा मेरे कमरे के सामने बैठोगे। हम तुमको काम देंगे।' हमने सुबह से शाम तक उसे बहुत अधिक काम दिया। अब उसने इधर-उधर कहना शुरू किया कि हम काम करने के लिये थोड़े ही संन्यासी बने हैं। हमें पता चला तो हमने उसे फिर बुलवाया और कहा, 'देखो भाई, मैं तुमको जो काम देता हूँ, वह इसलिये नहीं कि तुम्हारे काम से इस आश्रम की आय बढ़े या मुझे एक आदमी की कम आवश्यकता हो। मैं तो तुम्हें इसलिये काम देता हूँ जिससे तुम्हारी चेतना शुद्ध हो। तुम्हारी चेतना की ऊर्ध्वगति देने के लिये यहीं से शुरू करना पड़ेगा। तुम्हारे अनेक संस्कार हैं, अद्भुत आकांक्षायें हैं। तुम जप के द्वारा उनको दबाकर अपने ऊपर अन्याय कर रहे हो। इसलिये देखो, सर्वप्रथम कर्मयोग के द्वारा तुम चित्तशुद्धि करो और योग के अन्य अभ्यास करो। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध लगाओ।'

उसने कहा, 'स्वामीजी, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध करने से मोक्ष मिलेगा क्या?' हमने कहा, 'देखो, यह प्रश्न बिल्कुल असंगत है। यह प्रश्न ठीक वैसा ही है जैसे कोई पूछे कि चूल्हा क्यों बनायें, चूल्हा बनाने से पेट भरता है क्या? सच है, चूल्हा बनाने से पेट नहीं भरता, मगर पेट भरने के लिये चूल्हे की जरूरत तो है न?'

चित्त का स्वभाव

चित्त के तीन दोष हैं – मल, आवरण और विक्षेप। इन तीनों को दूर करने के लिये गुरु साधक की सीमा को, उसकी मर्यादा को देखते हैं। उसी आधार पर उसे साधना की दीक्षा देते हैं। कितने साधक हैं जिनका मन रुकता नहीं। आप आसन लगाकर 'ॐ नम: शिवाय' मंत्र का जप कर रहे हैं और मन किसी और जगह पर भटक रहा है। जब आपको उसके भटकने का अहसास होने लगता है, तब वह तुरन्त वापस आ जाता है और कहता है, 'अरे! मैं तो यहीं हूँ। मैं कहीं नहीं गया था।' मगर वह जरूर गया होता है। वह जब तक इस प्रकार आँख-मिचौनी खेलता रहेगा, तब तक साधना निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न नहीं होगी।

इसे हम एक छोटे-से उदाहरण द्वारा समझेंगे – बेटा पढ़ रहा है और उसका मन किसी और जगह घूम रहा है। थोड़ी देर बाद उसके पिताजी देखते हैं और पूछते हैं, 'बेटा कहाँ गये थे?' बेटा कहता है, 'बाबूजी, मैं तो कहीं नहीं गया था। बहुत देर से यहीं बैठकर पढ़ रहा हूँ।' पिताजी सोचते हैं, 'अच्छा, बेटा पढ़ रहा है, क्योंकि परीक्षा देनी है' लेकिन उसने नीचे उपन्यास रखा हुआ है। बेटा जान रहा है कि उसकी क्या तैयारी हो रही है, और पिताजी समझ रहे हैं कि बेटा बड़ी लगन के साथ पढ़ रहा है। ऊपर पढ़ाई की किताब और नीचे उपन्यास, मगर पिताजी वह सब नहीं जानते और बेटा सब कुछ समझता रहता है।

साधना के समय भी ठीक ऐसा ही होता है। यह जो नीचे का द्वन्द्व है, वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है और पूरी शक्ति को वह नीचे की ओर खींच रहा है। ऐसी स्थिति में उस साधक को कौन-सी साधना बतलाई जाय? तब कहा जाता है प्राणायाम करो। चित्त और प्राण दो तत्त्व हैं। प्राणों के द्वारा चित्त को प्रभावित कर सकते हैं। प्राणायाम में प्राणों को पूरक के द्वारा खींचा, रोका और रेचक किया – मन गायब, क्योंकि प्राणायाम के द्वारा चित्त पर असर पड़ता है। और ध्यान के द्वारा प्राणों पर चित्त का असर पड़ता है। कई योगाभ्यासी तो मात्र कर्मयोग करते-करते 'केवल कुंभक' की स्थिति में आ जाते हैं।

गुरु की विशिष्टता

गुरु लोग सर्वप्रथम साधकों का अध्ययन करते हैं और उनकी प्रकृति के आधार पर उन्हें साधना के बारे में बतलाते हैं। उसके पूर्व वे कुछ भी नहीं करते, क्योंकि तब तक साधक का मन अशान्त रहता है। हम निश्चित ही अशान्त हैं और हमें इससे छुटकारा पाना हैं, मगर इसका कारण बाह्य नहीं है। इसका कारण है चित्त की अस्थिरता। इसी सन्दर्भ में गुरु और ईश्वर, ये दो तत्त्व जीवन में आते हैं। चाहे आप ईश्वर को एक मानो या लाख मानो, मानो या न मानो, हम उसका निर्णय नहीं देंगे, क्योंकि यह असंभव है। मगर आपको अपनी चेतना को देखने के लिये एक अधिष्ठान चाहिये, इसीलिये जीवन में गुरु की आवश्यकता महत्त्वपूर्ण है।

आध्यात्मिक जीवन में कई प्रकार की आवश्यतायें होती हैं। वात्सल्य भाव की आवश्यता होती है, माधुर्य भाव की आवश्यकता होती है और साख्य भाव की भी आवश्यता होती है, जहाँ वह अपने अन्दर की श्रद्धा को दे सके। श्रद्धा किसको दें, बड़ा मुश्किल प्रश्न है। आप सोचो, आपके पास इतनी श्रद्धा है, आप किसी को देना चाहते हो अथवा नहीं देना चाहते? जरूर देना चाहते होंगे। देने से हल्के हो जाओगे। श्रद्धा दान करने से मानसिक संतुलन आ जाता है और श्रद्धा न देने के कारण मन बोझिल हो जाता है। जो मनुष्य अपनी श्रद्धा दूसरों को नहीं दे पाता, वह बड़ा दु:खी होता है।

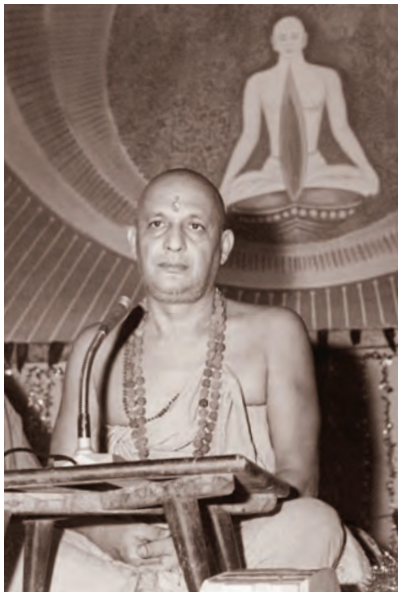

जो व्यक्ति किसी को अपना प्रेम नहीं दे पाता, कैसा अनुभव करता है? लगता है मर जायें। यहाँ तक कि आत्महत्या करने की भावना होती है। और जिस व्यक्ति को जीवन में प्रेम मिला नहीं है, वह प्रेम नाम की चीज पर विश्वास नहीं करता। उसे लगता है सब धोखेबाज हैं, मगर प्रेम मिलते ही उसके सारे सिद्धान्त बदल जाते हैं। तब लगता है, 'अहा! सब कितने अच्छे हैं।' उसी प्रकार जिसमें श्रद्धा होती है, बहुत ऊँची भावना होती है, वह उसे कहीं देना चाहता है, मगर दे नहीं पाता। ऐसी स्थिति में उसकी

किसी के साथ पटती भी नहीं। ऐसे व्यक्ति न अपने बीवी-बच्चों से प्रेम कर पाते हैं, न अपने किसी मित्र से प्रेम कर पाते हैं और न ही अपने आचार्य-प्राचार्य को अपनी श्रद्धा दे पाते हैं। इसीलिये हम बीमार हैं, हम भयभीत हैं। हममें श्रद्धा की पात्रता न होने से असुरक्षा की भावना है, डर है। इसी श्रद्धा को किसी नि:स्वार्थ-परायण व्यक्ति पर टिका दो, किसी सुपात्र को दे दो, तब तुम हल्के हो जाओगे और तुम्हारे चारों ओर का वातावरण स्वत: खुशहाल हो जायेगा।

गुरु का अपने शिष्य से किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं होता। गुरु ऐसा नहीं सोचता कि कलेक्टर साहब अपने शिष्य हैं, तो चलो कम-से-कम सीमेंट का परमिट मिल जायेगा, या अमुक साहब अपने मित्र हैं तो पर्याप्त मात्रा में चीनी मिल जाया करेगी। वह गुरु का धर्म नहीं है। गुरु ऐसा व्यक्ति होता हे, जो अपने शिष्यों की साधना का जिम्मा अपने ऊपर लेता है। गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध विशिष्ट होता है। यह सम्बन्ध कथनों, परिभाषाओं एवं व्याख्याओं से परे है। यह सम्बन्ध प्रेम, स्नेह और सुरक्षा का है, लेकिन वह इन सबसे भी ऊपर और परे है। मनुष्य रूप में दोनों ही शरीरधारी हैं, किन्तु गुरु-शिष्य सम्बन्ध का दैहिक, भावनात्मक अथवा मानसिक प्रभावों से कोई मतलब नहीं रहता। जहाँ पर शरीर, मन और इन्द्रिय समूह की कोई गति नहीं होती, उस विशिष्ट चेतना-स्तर पर ये दोनों परस्पर दिव्य अलौकिक वार्तालाप करते रहते हैं।

गुरु निरंतर शिष्यों के हितार्थ संलग्न रहते हैं, इस कारण उनके भोजन, वस्त्र आदि आवश्यक चीजों का जिम्मा शिष्य ले लेते हें। वे कहते हैं, 'गुरुजी, आप इस चिन्ता को छोड़ो, यह हम संभाल लेंगे।' गुरुजी निश्चिन्त हो जाते हैं, और तब जाकर गुरु-शिष्य के अन्दर नि:स्वार्थता की सृष्टि होती है। इसके विपरीत यदि शिष्य स्वार्थ-परायण होकर गुरु के पास जायें अथवा गुरु स्वार्थ से शिष्य के पास जायें, तो निश्चित है कि दोनों का आध्यात्मिक जीवन चौपट हो जायेगा।

इसलिये मैं कहता हूँ, मैं बड़ा आदमी हूँ या तुम बड़े आदमी हो, अपनी जगह अच्छी बात है, मगर यह बड़प्पन हमारे और तुम्हारे बीच दीवार बन सकती है। इसलिये इसे भूल जाओ। आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने हेतु यह नितान्त आवश्यक है कि हमारा गुरु-शिष्य का सम्बन्ध एक स्टेज पर हो, जहाँ कोई पुरुष नहीं, कोई स्त्री नहीं, कोई जवान नहीं और कोई बूढ़ा नहीं। मैं एक बड़ा विश्व-विख्यात संन्यासी नहीं और तुम एक साधारण सामाजिक व्यक्ति नहीं। तुम साधक और मैं तुम्हारी साधना का कर्णधार, बस।

– गुरु पूर्णिमा, 27 जुलाई 1980, सतना

शिष्यत्व ही वास्तविक गुरुत्व है

आज गुरु पूर्णिमा का पवित्र महोत्सव है। देश-विदेश से हजारों भक्त और साधकगण यहाँ आये हैं। सभी प्रेम और श्रद्धा के अलौकिक समुद्र में डुबकियाँ लगाकर अपनी सुध-बुध खोते जा रहे हैं। सबका दिमाग आज बेकाबू है – यह भक्तियोग नहीं है क्या? यह राजयोग नहीं है क्या? यह कुण्डलिनी योग नहीं है क्या? यह कौन-सा योग है? कर्मयोग, राजयोग, हठयोग, भक्तियोग, लययोग, ज्ञानयोग आदि योग के अनेक अंगों का जो वर्गीकरण है, वह तो हम लोग समझने और समझाने के लिए किताबों में करते हैं, मगर देखा जाए तो सब एक साथ चलते हैं। साधना की सभी प्रक्रियाएँ एक ही लक्ष्य को सम्बोधित करती हैं।

यहाँ योग पर, आसन और प्राणायाम पर, जप और ध्यान पर, रामायण और श्रीमद्भागवत पर बात हो रही है। लोगों का दिमाग एकदम बेकाबू है, केवल हृदय खुला हुआ है। ऐसा लगता है कि सब लोग अपने दिमाग को घर के अन्दर ताले में बन्द करके आ गये हैं, केवल हृदय पसारा हुआ है। अगर ऐसी भावपूर्ण स्थिति कुछ दिन और चलती रहेगी तो कितने लोगों का ध्यान तो अपने आप लग जायेगा। अब इसको कौन-सा योग कहोगे, बताओ तो?

ध्यान द्वारा सूक्ष्म आत्मा की अनुभूति

शरीर के पीछे मन है, मन से सूक्ष्म बुद्धि है, बुद्धि से सूक्ष्म अहंकार है और अहंकार से सूक्ष्म आत्मा है, जो इतनी सूक्ष्म शक्ति है कि किसी को कुछ समझ नहीं आता। उसके बारे में सुनते हैं, बोलते हैं, मगर कुछ दिखता नहीं। रामायण, गीता और श्रीमद्भागवत जैसे महान् सद्ग्रन्थों को पढ़ने के बाद महात्माओं के पास बैठकर, वेदान्त सुनकर कभी सब समझ में आ भी जाता है कि पाँच तत्त्व, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ब्रह्म क्या है, आत्मा क्या है, मगर जिस वक्त अनुभूति का ख्याल आता है तब सब बौद्धिक ज्ञान फेल हो जाते हैं। क्यों? इसलिए कि जिस चीज को तुम देखना चाहते हो वह चीज तुम्हारे सामने है, मगर तुम्हारे पास उसे देखने का सूक्ष्म उपकरण नहीं है।

जिसे तुम पाना चाहते हो, वह कोई दूर की चीज नहीं है। कहते हैं कि दुनिया में तुम्हारे सबसे नजदीक जो है वह 'तुम' हो। तुम्हारे और उसके बीच में कोई दूरी है ही नहीं। मगर सवाल उठता है अनुभव करने का और इस अनुभव

को साकार करने के लिए, अपने को अनुभूतिगम्य बनाने के लिए, हम लोग इस स्थूल मन को सूक्ष्म बनाते हैं, सूक्ष्म मन को अति सूक्ष्म बनाते हैं और बाद में उस अति सूक्ष्म मन को भी हटा देते हैं। उस मन के बदले एक दूसरे देखने वाले को ले आते हैं। यह बतला देता हूँ कि ज्ञान केवल मन, बुद्धि या भावना से ही नहीं होता। अगर उनको हटा भी दोगे तो हमारे अन्दर एक और चीज है, जिसके द्वारा सारी दुनिया को देखा जा सकता है, दुनिया का काम किया जा सकता है, दुनिया का आनन्द लिया जा सकता है। जब हम उस अदृश्य शक्ति का जागरण करते हैं तो जैसे-जैसे हमारा आन्तरिक चश्मा साफ होता जाता है, वैसे-वैसे वह तत्त्व हमें स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

कभी-कभी हम यह सोचते हैं कि इस पर्व का नाम गुरु पूर्णिमा के बदले शिष्य पूर्णिमा रखा जाता तो ज्यादा अच्छा रहता, क्योंकि गुरु जनों की पूर्णिमा तो कब की हो चुकी रहती है। अगर पूर्णिमा नहीं हुई होती तो गुरु नहीं बनते। जिनका चित्त अंधकारमय है, जिनके मन में मलिनता है, जो अविद्या से ग्रस्त हैं, वे गुरु हो ही नहीं सकते – यह पक्की बात है। जिनका अन्दर-बाहर प्रकाश से परिपूर्ण है, ज्योत्स्नामय है, जिनके अन्दर आत्मज्ञान का प्रकाश चारों दिशाओं में फैला हुआ है, उनको कहते हैं गुरु। आज के पर्व को शिष्य पूर्णिमा कहा जाए तो अधिक अच्छा होगा, क्योंकि आज आप शिष्यों का मन कितना प्रकाशित हो रहा है! तुम्हें भले ही जीवन का अन्तिम सार तत्त्व आज दिखाई नहीं देता, फिर भी तुम्हें अपने अन्दर एक प्रकाश का अनुभव हो रहा है। अब इसको गुरु पूर्णिमा कहोगे कि शिष्य पूर्णिमा?

आज के दिन से हर व्यक्ति को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, चाहे बड़े घर का हो या छोटे घर का, सदाचारी, कामी, क्रोधी, व्यभिचारी, जो भी हो, उसे अपनी दिनचर्या से एक घण्टा एकदम अलग कर देना चाहिए। ऐसा मानो कि दिन में तेईस घण्टे होते हैं, चौबीस नहीं। इस एक घण्टे में आसन लगाओ, प्राणायाम करो और प्राणायाम के बाद श्वास में मंत्र को जपो। फिर श्वास का अनुभव पीछे सुषुम्ना में करो, और उसमें ऊपर-नीचे अपने मंत्र को जपो। उसके बाद भ्रूमध्य में मन को टिकाओ, जहाँ तुम लोग टीका लगाते हो। इसको भूलना नहीं, रोज करना।

भ्रूमध्य पर ध्यान करोगे तो एक छोटा-सा तिल जैसा बिन्दु दिखलाई पड़ेगा। इसके लिए कल्पना करने की जरूरत नहीं है, वह दिखाई देगा। जोर से आँखें बन्द नहीं करना, आराम के साथ आँखें बन्द करो। मन भागता है, भागने दो। बाहर रेडियो की, बर्तन की या चिल्लाने की आवाज आती है, आने दो। केवल अपनी सुरति को भ्रूमध्य के बिन्दु में लगाये रखो। यह बिन्दु सारी सृष्टि का, सारी माया का, सारे ड्रामे का आधार है जो बाह्य और अन्तर जगत् में चल रहा है। इस बिन्दु को पकड़ने के बाद गहरे ध्यान में चले जाओगे। एक घण्टा केवल इस आध्यात्मिक साधना के लिए दो, अन्यथा तुम्हारी वही हालत होगी जो आज यूरोप और अमेरिका की हो रही है। भारत के गौरव को भूलो नहीं।

ध्यान के अनेक उपाय हैं, केवल एक नहीं। हर व्यक्ति को अपने-अपने अनुसार ध्यान का रास्ता चुनना चाहिये। उसमें जो सरल उपाय है वह है मंत्र-जप। यद्यपि मंत्र का जप तुम्हें बहुत धीरे-धीरे आगे ले जायेगा, किन्तु निश्चित रूप से अपने लक्ष्य तक पहुँचोगे। सभी को मंत्र का जप, उसका अनुष्ठान और उसकी विशेष क्रियाएँ करनी चाहिये। करते जाओगे तो बहुत तरक्की होगी।

मैं तो अभी भी तुम लोगों को ध्यान करा सकता हूँ, बहुत आगे छलांग भी लगवा सकता हूँ, मगर मुझे डर लगता है, क्योंकि तुमने तैयारी तो कुछ की नहीं है। रोज निन्यानबे के चक्कर में पड़े रहते हो। कोई साड़ी खोज रहा है, कोई चूड़ी खोज रहा है, तो कोई बीवी खोज रहा है। ऐसी स्थिति में अगर तुम लोगों को आगे बढ़ायेंगे तो बावले हो जाओगे। मैं एक हाथ मारूँ तो सबको सुला सकता हूँ। आखिर गुरुजी ने मुझे कुछ दिया है, खाली मुफ्त में साधु थोड़े ही बने हैं!

कोई आदमी दुनिया में किसी को एक दिन ठग सकता है, एक साल ठग सकता है, मगर पचास साल से दुनिया को क्या मैं ठग रहा हूँ, जरा सोचो तो सही। गुरुजी के पास सामर्थ्य है कि नहीं, यह पूछने के बदले पूछो कि चेले

के पास गुरु के आशीर्वाद को धारण करने के लिए पात्रता है या नहीं। गरम पानी डाल दूँगा तो कच्चा गिलास फूट जायेगा।

गुरु पूर्णिमा के इस शुभ अवसर पर तुम सब लोग यहाँ आये हो। जो कुछ तुम लोगों को यहाँ मिला है, वह बहुत है। अगर इतना भी लेकर अपने घर वापस जाओगे, तो बहुत बड़ी बात होगी। 'हम सब चेले हैं और सद्गुरु केवल एक' – ऐसा सोचकर तुम लोग अपने घर वापस जाना और फिर अगले साल गुरु पूर्णिमा के लिए मुंगेर आना। मुंगेर में आओगे तो गंगा-स्नान, चण्डी-दर्शन और कर्णचौरा में बैठकर तुमको उस महायोगी कर्ण की याद आयेगी, जिसे इतिहास ने बहुत उपेक्षित किया है।

समर्थ गुरु ही नहीं, समर्थ शिष्य भी चाहिए

दो बातें और कहना चाहता हूँ। पहली बात यह कि केवल गुरु समर्थ हो, यह काफी नहीं, शिष्य को भी समर्थ होना पड़ता है। दूसरी बात, गुरु स्वयं बनता नहीं। गुरु और शिष्य, ये दोनों अलग-अलग विशेषताएँ हैं। कुछ पैदा होते ही गुरु बनकर आते हैं और कुछ पैदा होते ही चेला बनकर आते हैं। चेले का गुरु में प्रमोशन नहीं हो सकता। बहुत-से लोग दस-बारह साल के बाद बोलते हैं, बहुत दिन हो गये चेला रहते हुए, अब गुरु में थोड़ा प्रमोशन हो जाना चाहिये। अरे! गुरु चेले से बढ़कर नहीं है। शिष्य की स्वयं अपनी एक हस्ती होती है और वह शिष्य, शिष्य रहते हुए भी सारी दुनिया को मार्ग और प्रकाश दे सकता है।

हमारे गुरु स्वामी शिवानन्द जी थे। हमने उनके सामने और पीछे हमेशा यही सोचा और आज भी सोचते हैं कि हमारा शिष्यत्व ही हमारी गुरुता है। हमें गुरु बनना ही नहीं है। तुम भले ही हमें गुरु मानो, किन्तु हम तो चेला रहे हैं, हमारे लिये उतना ही ठीक। जब हम शिष्य बनते हैं तब हमारे अन्दर एक प्रकार की अहंकारहीनता का जन्म और बोध होता है तथा उस समय अपने अन्दर एक प्रकाश और ज्योत्सना का जन्म होता है। जब शिष्य में गुरुता आती है, जब शिष्य अपने को गुरुजी मानने लगता है तो उसके अन्दर एक तरह के अहंकार का जन्म होता है। जिस समय शिष्य के अन्दर गुरुत्व का बोध आया और अहंकार का जन्म हुआ तो उस समय वे गुरु तो खैर होंगे ही नहीं, चेला भी नहीं रह पायेंगे। गुरुपन से तो गये ही, चेलापन से भी चले गये।

सच्चा शिष्यत्व

शिष्यत्व स्वयं में एक महान् गरिमामय स्थिति है। शिष्य नित्य-निरन्तर अपने अन्दर अपने गुरु की छवि को ठीक उसी प्रकार देख सकता है, जैसे सामने गुरु खड़े हों। इस सम्बन्ध में एक छोटा-सा अनुभव सुनाता हूँ। मेरे साथ कई बार ऐसा होता है कि मुझे एकान्त मिलता ही नहीं। मेरे चारों ओर ये स्वामी और भक्त लोग भूत-प्रेत-पिशाच के सदृश लगे रहते हैं। मगर कभी-कभी मुझे एकान्त मिलता है, बाथरूम में ही सही और मैं वहाँ एक-डेढ़ घण्टा बैठ जाता हूँ और थोड़ी देर के बाद मैं अपने-आप में एकदम गायब हो जाता हूँ।

यह अवस्था हमेशा नहीं, कभी-कभी होती है। ऐसे समय मेरे गुरु मेरे सामने उसी प्रकार स्पष्ट मालूम पड़ते हैं, जैसे मैं तुमको प्रत्यक्ष मालूम पड़ता हूँ और मुझे तुम लोग मालूम पड़ रहे हो। उस समय सत्य और कल्पना में कोई फर्क नहीं रहता। यह अनुभव बहुत थोड़ी देर ही रहता है, मगर उतनी देर में मुझे सारा-का-सारा नक्शा मिल जाता है और जब मैं उस विशेष अवस्था से बाहर आता हूँ तो मुझे वह नक्शा याद रहता है। हाँ, कुछ चीजें जरूर भूल जाता हूँ। जैसे-जैसे समय बीतता है, मैं उस दृश्य को, ज्ञान को भूलता जाता हूँ, इसलिए मैं जल्दी-से कुछ आवश्यक चीजों को नोट कर लेता हूँ। नोट करते-करते बहुत चीजें भूल जाता हूँ और जिन चीजों को मैं भूल जाता हूँ उन चीजों को व्यवहार में, जीवन में गलत कर बैठता हूँ। जीवन में मैंने जितनी गलतियाँ की हैं, केवल इसलिए कि जो कुछ उस अवस्था में मुझे बोला गया था, मैं उसे भूल गया था। आज तक जीवन में जितने भी निर्णय लिये हैं, बिल्कुल ठीक-ठीक,

परन्तु उसके साथ दो-चार निर्णयों में मेरी जो गलती हुई, उसका कारण यह है कि मुझे एकदम स्पष्ट नक्शा मिला, मगर बाहर आते-आते मैं सब भूल गया।

अब प्रश्न है कि नित्य-निरन्तर गुरु से सम्पर्क कैसे स्थापित किया जाए? जब अन्दर एकान्त होता है, जब अन्दर न भाई रहता है न बहन, न पिता रहता है न पुत्र, न सम्पत्ति रहती है न सुख-दुःख, न भूत, न वर्तमान, न भविष्य, न हम, न तुम, कुछ नहीं रहता, जब केवल मैं और केवल मैं रहता हूँ, वही अवस्था उस एकान्त की है। सांख्य ने उसको असंग कहा है। जब मन अनुभूति, विचार, स्फुरण आदि से बिल्कुल शून्य हो जाता है, ऐसे एकान्त में जिस गुरु के प्रति तुम्हारे अन्दर अनुरागात्मिका भक्ति है, वह तुरन्त आयेगा और वह जो गुरु तुम्हारे सामने साक्षात् रूप से उपस्थित होता है, वह ज्ञानी गुरु है। वह तुम्हें प्रेरणा देगा, रास्ता बतायेगा। उसको समझो और उस रास्ते पर चलो। मनुष्य के इस असमर्थ जीवन के पीछे एक बहुत बड़ा उजाला है और उसी को आत्मसात् करने के लिए आज के दिन शुभ संकल्पों को दुहराओ, कुछ दो और कुछ ग्रहण करो।

आमि यंत्र, तुमी यंत्री

गुरु पूर्णिमा के दिन इन बातों को बतलाना जरूरी होता है, क्योंकि शिष्य अपने गुरु को बढ़ा-चढ़ा कर भगवान बना देते हैं। इस तरह वे अपना तो अहित करते ही हैं, बाद में गुरु का भी अहित करते हैं, और 'आप डूबे ब्राह्मण, ले डूबे यजमान' की कहावत चरितार्थ होती है।

जहाँ तक मेरा अपना प्रश्न है, मैं कोई प्रतिभाशाली आदमी नहीं हूँ। आरामतलबी में अव्वल नम्बर, मैं सच्ची बात बोलता हूँ। मुझे तुम एक महीने तक सो जाने के लिए बोल दो, मैं बिल्कुल निश्चिन्त होकर सो सकता हूँ। मेरी फिलॉसफी भी बड़ी विचित्र है। लोगों को सिखलाता हूँ 'योग', मगर आन्तरिक रूप से समझता हूँ, क्या और क्यों करना। कुछ भी करने की जरूरत ही नहीं है, यूँ ही पड़े रहेंगे। नरक है तो ठीक, स्वर्ग है तो भी ठीक है, हम उसी में राजी हैं, क्योंकि करने और कराने वाला कोई और है। जो होना है, वह स्वतः हो ही रहा है।

यदि मन एकाग्र हो जाता है, ठीक है। यदि मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आते हैं, तो भी ठीक है। सुकर्म, दुष्कर्म, अपकर्म, कुकर्म होता है, ठीक है। जो कुछ बुरा होता है, उसका दण्ड मिलता है, वह भी ठीक है। लोग मारेंगे या राजगद्दी पर बैठा देंगे, ठीक है। यह भी ठीक, वह भी ठीक।

हमारे गुरुजी जब भी पूछते थे कि तुम जप करते हो तो हम बोलते थे, आपने जितना बताया है, उतना करते हैं, उससे आगे बिल्कुल नहीं करते हैं। मैं अभी भी पाँच माला रात को प्रतिदिन जप करता हूँ, क्योंकि गुरुजी ने बतलाया है। उन्होंने कहा इसलिए करता हूँ, वैसे अपने को तो कुछ करना नहीं है।

मुझमें ऐसी लापरवाही होते हुए भी गुरुजी मेरे निकट हैं। उन्हीं के कारण मैंने बहुत काम किया है, बहुत काम करूँगा, इतिहास के कदमों को प्रभावित करूँगा, संस्कृति के मार्ग को, स्वरूप को बदलूँगा। यह मुझे अच्छी तरह मालूम है, मगर करने वाला मैं नहीं।

यह सब मैं इसलिए बतला रहा हूँ कि तुम लोग अपनी अयोग्यता, अपने दोष, दुर्गुण, चरित्रहीनता, सदाचारहीनता, अपने व्यसन – जुआ, चोरी, व्यभिचार, नशा आदि, जो कुछ तुम लोग करते हो, उसके बारे में सोचना छोड़ दो। एकदम ध्यान मत दो, तुम्हारे वश की चीज नहीं है। केवल सोचने और सिर मारने से क्या फायदा होगा?

बस एक चीज का ख्याल रखो कि आत्मा के एकान्त में गुरुजी को कैसे देखा जाए। गुरु-शिष्य के बीच जो सम्बन्ध है, उसका मूल सूत्र अनुरागात्मिका भक्ति है। गुरु के प्रति जितना अधिक निःस्वार्थ प्रेम-भाव होगा, सखा-भाव होगा, उतनी ही तुमको आन्तरिक जगत् में सफलता मिलेगी। हम सबको बोलते हैं कि गुरु किसी का बॉस या साहब थोड़े ही है। वह तो असली प्रेमी है, दिलदार है। उसके और मेरे बीच तो माधुर्य सम्बन्ध है, गहन प्रेम का सम्बन्ध है। उसके और मेरे बीच बुद्धि का सम्बन्ध नहीं है, वह तो हृदय का सम्बन्ध है। इस प्रकार से हमलोगों को आगे बढ़ना होगा। गुरुजी से डरने की जरूरत नहीं है। अपने प्रेमी से कभी तुम डरते हो क्या? नहीं। जो बोलना है साफ-साफ बोल दो, दो-चार चप्पल लगायेगा और क्या करेगा? मगर गुरुजी जब-जब थप्पड़ लगाते हैं, तब-तब तकदीर जाग जाती है, नसीब खुल जाता है और चेला द्रुत गति से बढ़ चलता है अपने परम लक्ष्य की ओर। यह है गुरुजी का नकद इनाम!

अंत में केवल एक बात दुहराता हूँ, तुम अपने अन्दर की सम्पूर्ण शक्ति को गुरु के रूप में जगाओ। एकान्त में वह तुम्हारे कान में कुछ बोल जायेगा, स्वप्न में दिखा जाएगा और प्रत्यक्ष में कुछ कर जाएगा। अगर सुन लोगे, देख लोगे और पहचान लोगे तो तुम्हारी दुनिया की गाड़ी अपनी गति से बहुत मजे में चलेगी, जिन्दगी खुशी से बीतेगी।

– गुरु पूर्णिमा, 16 जुलाई 1981, जबलपुर

जीवन का मिशन

गुरु पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा भी कहते हैं। व्यासदेव जी का वास्तविक नाम था कृष्णद्वैपायन। काले थे इसलिए उनका नाम पड़ा कृष्ण, उनका गर्भाधान द्वीप में हुआ था, इसलिए उनको द्वैपायन कहते हैं और व्यास इसलिए कहते हैं कि उन्होंने वेदों को और ज्ञान को वैसे ही जोड़ा जिस तरह से एक जिल्दसाज कई कागजों को मिलाकर किताब को सिलता है। जिल्दसाजी की, सिलाई का काम किया, इसलिए उनको कहते हैं व्यास। व्यासदेव जी ने वेद लिखे नहीं हैं, उनका संकलन किया है, और अठारह पुराणों का भी संकलन किया।

पुराण का मतलब होता है, पहले की जानकारी। पुरा माने पहले और 'ण' का तात्पर्य ज्ञान से है। पहले के इतिहास को एक अलंकारिक ढंग से उन्होंने अठारह पुराणों में प्रस्तुत किया है। ये पुराण किसी की कल्पना नहीं हैं। कल्पना जैसे लगते हैं, क्योंकि पुराणों में उन्होंने तीन अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है। उनमें एक अलंकार है अतिशयोक्ति, दूसरा है रोचक और तीसरा है भयंकर। उन्होंने इन अलंकारों का भरपूर प्रयोग किया है ताकि तुम लोगों को याद रह सके। अभी तुम लोगों को तो इतिहास कई बार पढ़ना पड़ता है इम्तहान के लिए, याद ही नहीं रहता। इसलिए उसके साथ अतिशयोक्ति अलंकार जोड़ दिया, जिसकी वजह से लोगों को याद रहने लग गया।

पुराणों के बाद उन्होंने महाभारत लिखा है। हमारे यहाँ दो इतिहास हैं, रामायण और महाभारत। ये पुराणों में नहीं आते हैं। जब व्यासदेव ने महाभारत लिखा उस समय इसका नाम यह नहीं था, इसका नाम था 'जयम्'। इसलिए '*ततो जयमुदीरयेत्*', यह वाक्य आता है। यह एक युद्ध की व्याख्या है। बाद में इसका नाम पड़ा भारत, इण्डिया। जब भारत के लोगों ने उपनिवेशों की स्थापना की, एक ओर नेपाल की तरफ बढ़े, दूसरी ओर अफगानिस्तान की तरफ बढ़े, इधर बर्मा और थाइलैंड की ओर बढ़े, तब इसका नाम पड़ा महाभारत, ग्रेटर इण्डिया। घर में झगड़ा होता है तो कहते हैं महाभारत हो गया, लेकिन यह इसका सही अर्थ नहीं है। महाभारत का मतलब होता है, ग्रेटर इण्डिया।

महाभारत लिखने के बाद व्यासदेव जी को विषाद हो गया था। वे बहुत ही निराश हो गए, बहुत दुःखी हुए, बहुत परेशान दिखते थे। उनको बहुत अशान्ति थी, क्योंकि उन्होंने एक ऐसा ग्रंथ लिखा जिसमें युद्ध है, अन्याय है, स्त्री पर अत्याचार है। तब उन्होंने नारद जी से पूछा, 'हमको बहुत बुरा लग रहा है, क्या करें?' नारद जी ने कहा, 'अगर तुमको बहुत बुरा लग रहा है तो एक काम करो। तुम भगवान के बारे में कुछ लिखना शुरू कर दो। तुम्हारा दिमाग अपने-आप ठीक हो जाएगा।' तब व्यासदेव जी ने श्रीमद्भागवत लिखना शुरू किया, जिसमें केवल भक्ति ही भक्ति है, प्रेम ही प्रेम है। ऐसे प्रेम का वर्णन कि गोपियाँ दूध गर्म करके आ रही हैं और भगवान का नाम लेती जा रही हैं। तब जाकर व्यास जी को शान्ति मिली। उनका ही यह जन्मदिन गुरु पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। शंकराचार्य जी के समय से यह परम्परा चली कि सभी लोग इसी दिन अपने गुरु को पूजते हैं। जिसका जो भी गुरु हो, व्यास पूर्णिमा के दिन ही गुरु की पूजा होती है।

साधु-संन्यासी जब तक गुरु-पद पर रहता है, तब तक ही वह पूजा स्वीकार करता है। लेकिन एक समय जब वह लोकसंग्रह का त्याग करता है, लोकसंग्रह का त्याग माने लोगों से कुछ मतलब नहीं, दुनिया से कोई मतलब नहीं, अपना अकेला रहता है, उस वक्त वह गुरु-पद से सेवा-निवृत्त हो जाता है। हम सेवा-निवृत्त गुरु हैं।

स्वामीजी, आप सेवा-निवृत्त नहीं हो सकते हैं।

नहीं, आप लोग भावना में बहुत चीजें गलत कर देते हैं। भावना में आकर, बच्चे के साथ, पति के साथ, गुरु के साथ जो सम्बन्ध है, उसमें कभी बहुत

ज्यादा अति कर देते हैं। सम्बन्धों की एक मर्यादा होती है, चाहे वह सम्बन्ध पुत्र के साथ हो या माता-पिता के साथ या पति-पत्नी के साथ या गुरु के साथ। सम्बन्ध अमर्यादित नहीं होते, हर व्यक्ति को यह जानना चाहिए। अभी हमारी उम्र अस्सी के करीब है, हमारा जाने का समय है। अब आदमी जा रहा है और फिर भी चेलों के गफले में पड़ा हुआ है! चेलों के गफले से छूटना चाहिए। आखिर जब तुम कहीं जाते हो तब जाने की तैयारी करते हो कि नहीं? इस दुनिया को जब छोड़ने का समय आ गया, जब पता चल ही गया कि तुमको जाना है तब फिर तैयारी क्यों नहीं होती है? गफले में आदमी क्यों पड़ा रहता है? तू मेरा चेला मैं तेरा गुरु, तू मेरी बेटी मैं तेरा बाप, ये सब फालतू बातें हैं।

सम्बन्धों की मर्यादा होती है और उसी तरह उत्तरदायित्वों की, जिम्मेवारियों की भी मर्यादा होती है। मरते दम तक किसी की कोई जिम्मेवारी नहीं होती है, चाहे वह जिम्मेवारी पिता की हो या पुत्र, पति, पत्नी या किसी और की। हर चीज की एक मर्यादा होती है और वह मर्यादा नहीं रहने से फिर अराजकता आ जाती है। अगर हम मरते दम तक आश्रम की गद्दी पर बैठे रहें तो चेले झगड़ेंगे। वे आपस में कहेंगे कि मैं गद्दी का हकदार हूँ। इसलिए पहले से ही किसी को दे दो, वह संभाले अपना। हमने सन् 1983 में काम छोड़ दिया, जिम्मेवारी छोड़ दी। 1983 से अब तक 17 साल हो गये, 17 साल से स्वामी निरंजन संभाल रहे हैं। जो 17 साल निभा सकता है वह अगले 17 साल भी निभा लेगा। सबको करना पड़ता है।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

दुनिया में ऐसे तीन सम्बन्ध होते हैं जो एक से ही किये जाते हैं, अनेक से नहीं। एक तो पति और पत्नी का, दूसरा गुरु और शिष्य का और तीसरा भगवान और जीव का। पति की एक ही पत्नी होती है, वह दूसरी पत्नी नहीं रख सकता है। रखते हैं लोग, मगर उसको उचित नहीं मानते, स्वीकार नहीं करते। वैसे ही पत्नी का एक पति होता है, वह दूसरा पति नहीं कर सकती है। करती है तो उसको अनुचित कहते हैं। जिस प्रकार पति और पत्नी के बीच में एक-से-एक का सम्बन्ध है, उसी प्रकार गुरु और शिष्य में भी एक-से-एक, 'वन-टू-वन' का सम्बन्ध होता है, एक-से-अनेक का सम्बन्ध नहीं होता है। ऐसा नहीं कि मर्जी आई तो आज मेरे साथ, कल मर्जी आई तो बाबा धर्मानन्द के साथ, परसों मर्जी आई तो बाबा कर्मानन्द के साथ! हाँ, सत्संग सबसे होता है, परन्तु

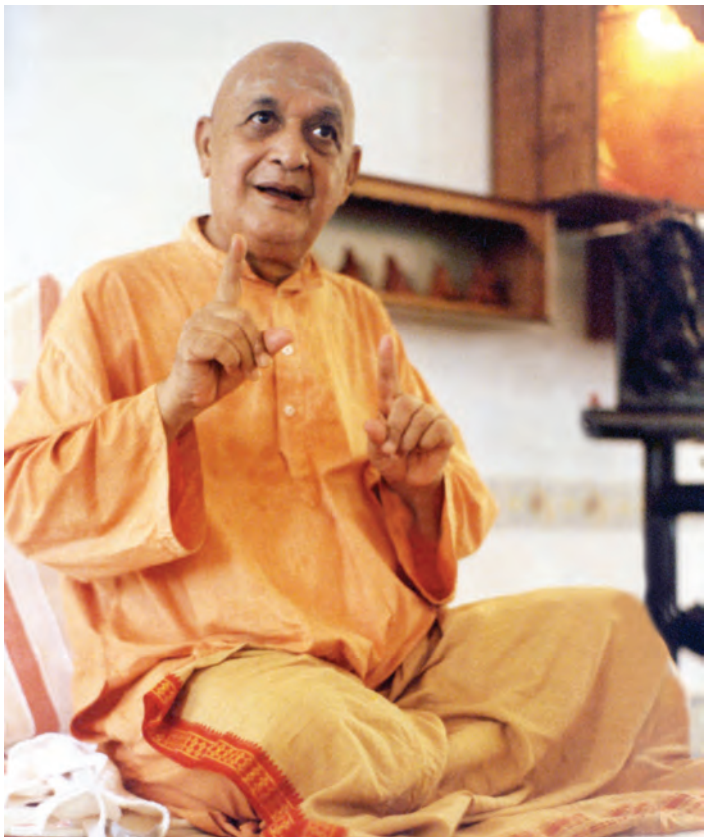

गुरु और शिष्य का जो सम्बन्ध है, वह एक के साथ ही होता है। यह न केवल हमारी मर्यादा है, बल्कि ईसाइयों, मुसलमानों, जैनों और अन्य धर्मों की भी है।

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध 'वन-टू-वन' का है, पति और पत्नी का सम्बन्ध भी 'वन-टू-वन' है और दोनों सम्बन्धों में गहराई बराबर सी ही है। फर्क इतना है कि एक तरफ सम्बन्ध की मर्यादा शरीर और भावना है, जबकि दूसरी तरफ सम्बन्ध की मर्यादा आत्मा है। गुरु और शिष्य में सम्बन्ध आत्मा से होता है, शरीर से कोई मतलब नहीं। हम तो यहाँ बैठे हैं, पर हमारी पूजा मुंगेर में हो रही है।

शरीर और आत्मा अलग-अलग चीजें होती हैं। पति और पत्नी का सम्बन्ध शरीर का है, भावनात्मक है, सामाजिक है। उसी तरह से गुरु और शिष्य के बीच भक्ति-भावना और आत्मा का सम्बन्ध है। मगर जहाँ तक गहराई का सवाल है, गहराई एक समान होती है। हम लोगों के यहाँ तो यह

कहा ही जाता है, ईरान में भी एक बहुत बड़े व्यक्ति हुए, जलालुद्दीन रूमी। वे सूफी थे और हमेशा यही कहा करते थे कि गुरु और शिष्य देखने में भले दो होते हैं, लेकिन हकीकत में एक ही होते हैं।

हम लोग बीसवीं शताब्दी के हैं, हमारा आधुनिक दिमाग बड़ा विचित्र है। आज का आदमी बहुत चंचल है, बड़ी-बड़ी बात कहता है। वह यह कहेगा जरूर कि गुरु और शिष्य एक होते हैं, मगर इसे व्यवहार में नहीं उतार सकता। बोलने में क्या रखा है, मगर जब व्यवहार का समय आता है तब गुरु-शिष्य के बीच एकता नहीं हो पाती, और मजे की बात है कि जितने भी चेले होते हैं उनको बढ़िया गुरु ही चाहिए, थोड़ा-सा भी घटिया गुरु हुआ तो छोड़ देते हैं!

हमलोगों को तो बढ़िया गुरु मिले हैं, आप हमारे बढ़िया गुरु हैं।

नहीं, यह तो तुम्हारी अपनी भावना है। इस बात को ध्यान से सुन लो! हम बढ़िया आदमी नहीं हैं, मगर तुम्हारे लिए बढ़िया हैं, क्योंकि तुम्हारी भावना अच्छी है, तुम हमको बहुत बढ़िया आदमी समझते हो। किसी भी गुरु का बढ़िया होना शिष्य की भावना पर निर्भर है, याद रख लो। यह बात केवल गुरु के बारे में नहीं, बल्कि पति-पत्नी के बारे में भी लागू होती है। अगर घर में तुम्हारा पति बहुत अच्छा है तो इसका मतलब यह नहीं कि तुम्हारा पति सचमुच वैसा है, बस तुम्हारी समझ अच्छी है। 'मेरी पत्नी तो बहुत झगड़ालू है, बहुत तंग करती है', इसका मतलब है कि पतिदेव की समझ ठीक नहीं है। पति अगर अपनी स्त्री में दोष देखता है तो दोष पत्नी में नहीं, पति की दृष्टि में है। दृष्टि-दोष के कारण ही पति को पत्नी में और पत्नी को पति में दोष दिखलाई पड़ता है। ऐसे ही शिष्य को गुरु में भी दोष दिखाई पड़ता है।

अब एक बात तुमको साफ-साफ बोलता हूँ! एक राजमिस्त्री ईंटों को लेता है और बड़ा सुन्दर महल तैयार करता है, लेकिन उस सुन्दर महल में कहीं ईंटों का भद्दापन दिखाई नहीं देता। उसी तरह से एक दर्जी साधारण कपड़े को लेकर सुन्दर वस्त्र तैयार करता है, फैशन शो की लड़कियों को पहनाकर मिस इण्डिया बना देता है। कहने का मतलब यह कि शिष्य का बढ़िया होना जरूरी नहीं है। हर एक तो यह सोचता है कि 'हे भगवान! मेरे को एक अच्छा चेला दो', लेकिन अगर अच्छा चेला मिल गया तो गुरु किस काम का? तब तो वही तुम्हारा गुरु हो गया! अगर चेला बढ़िया होता है तो फिर गुरु की जरूरत ही नहीं पड़ती। चेले का मतलब घटिया! अगर डॉक्टर सोचे कि मेरी

क्लीनिक में कोई बीमार आए ही नहीं, तो फिर डॉक्टर किस काम का! जैसे डॉक्टर के यहाँ बीमार ही जाते हैं वैसे ही गुरु के यहाँ सब मूर्खों को ही आना चाहिए। तब तो ज्ञान देगा न? अगर तुम ज्ञानी हो जाओ तो फिर तुम्हें मुझसे कोई मतलब ही नहीं है। घर में बैठे रहो, ज्ञानी तो हो ही गए हो।

इसी तरह, अगर गुरु परिपूर्ण हो तो फिर वह गुरु बनना नहीं चाहता है। जब परिपूर्णता की अवस्था आती है तब व्यक्ति में गुरु बनने की आकांक्षा नहीं रहती है। सभी परिपूर्ण गुरु चाहते हैं, मगर परिपूर्ण व्यक्ति गुरु बनने लायक नहीं रहता। दक्षिण भारत में एक महात्मा थे, उनका नाम रमण महर्षि था। वे किसी से बात नहीं करते थे, अकेले में बैठे रहते थे। उनसे मिलने के लिए बहुत-से लोग आते थे। सन् 1941-42 की बात कह रहा हूँ। रमण महर्षि बड़े उच्चकोटि के विश्वविख्यात महात्मा थे, दक्षिण भारत में अरुणाचलम् के पास तिरुवन्नमलई में रहते थे। उन्होंने कोई आश्रम नहीं बनाया, वहीं एक सेठ ने उनको एक छोटी-सी जगह दे दी। वे दिनभर पैर पसारकर पड़े रहते थे, कोई उनसे उपदेश देने के लिए कहता तो वे कहते थे – '*नान यार*, अपने को खोजो'। इतना ही बोलते थे वे। कभी उपदेश नहीं देते थे। परिपूर्ण गुरु का यह हाल होता है।

जो गुरु विदेहमुक्त होते हैं, जिनको अपने शरीर की जानकारी नहीं होती है, जिनको कष्ट या आराम, दुःख या सुख की जानकारी नहीं होती और जिनके मन में द्वैत-भाव नहीं रहता, वे गुरु न शिक्षा देते हैं और न ही दे सकते हैं। गुरु वही बन सकता है जिसके मन में द्वैत-भावना होगी। इसलिए शिष्य को कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि मेरा गुरु परिपूर्ण हो। अगर तुम्हारी भावना शुद्ध है तो तुम्हारे लिए तुम्हारा गुरु अपने आप परिपूर्ण हो जाता है।

जितने भी संत-महात्मा हैं, चाहे जिस धर्म के हों, सब की करनी एक ही होती है और वह करनी होती है तपस्या। सब संत, सब साधु-महात्मा, सब गुरुजन तपस्या करते हैं। विद्वत्ता आवश्यक नहीं। साधु-महात्मा को विद्वान् होने की जरूरत नहीं है। हाँ, विद्वान् हो तो बहुत अच्छा। व्यासदेव जी, शंकराचार्य जी, रामानुजम्, ये सभी बहुत उच्चकोटि के विद्वान् थे।

गुरु और ईश्वर

गुरु के साथ शिष्य के जो सम्बन्ध होते हैं उनमें पहला है गुरु और शिष्य का एक साथ रहना, दूसरा कि शिष्य गुरु की सेवा करे और तीसरा, गुरु के प्रति उसके मन में भक्ति हो। गुरु और ईश्वर, आध्यात्मिक जीवन में ये दो प्रमुख

तत्त्व होते हैं। इनमें गुरु का स्थान सबसे पहले आता है, उसके बाद ईश्वर का स्थान आता है, क्योंकि सबसे पहले दरबान, उसके बाद मालिक।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काकें लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपनो, जिन गोविन्द दियो मिलाय॥

हर व्यक्ति के अन्दर ईश्वर का निवास है, किन्तु हमें उसका अनुभव नहीं होता है। मेरे अन्दर, तुम्हारे अन्दर और सबके अन्दर परमात्मा उपस्थित है, किन्तु पता नहीं चलता कहाँ पर है। ढूँढते हैं तो मिलता नहीं है। हाँ, वे बैद्यनाथ मन्दिर या किसी और मन्दिर में दिखाई देते हैं, पर अन्दर में नहीं दिखाई देते। संत-महात्माओं ने कहा है कि उस ईश्वर तत्त्व को गुरु तत्त्व प्रकट करता है।

गोपियों और श्री कृष्ण के बीच क्या सम्बन्ध था? वह सम्बन्ध था प्रेम-रस का। जब तक गोपियों को भगवान कृष्ण का साहचर्य मिलता था, तब तक रास लीला होती थी, पर जब वे वृन्दावन-मथुरा छोड़कर द्वारिका चले गए, गोपियाँ तो पीछे ही रह गयीं। परन्तु गोपियों को भगवान कृष्ण की अनुपस्थिति का कभी अनुभव नहीं हुआ, बल्कि उनके विरह का अनुभव हुआ। यह चीज इतनी जल्दी समझ में नहीं आएगी। विरह का अनुभव और उपस्थिति का अनुभव, दोनों समान हैं, क्योंकि जब किसी के विरह की भावना तुम्हारे मन में आती है, तब उस व्यक्ति की उपस्थिति का अनुभव भी होता है। तो गोपियाँ विरह से आकुल हो गयीं और उस विरह की वजह से उन्हें श्रीकृष्ण की उपस्थिति की अनुभूति नित्य-निरंतर अपने अन्दर में होती रही। जब भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव को मथुरा भेजा कि गोपियों को जाकर देख आओ तब गोपियों ने उनसे कहा – *उधो मन नाहीं दस-बीस, एक हुतो सो गयो श्याम संग, कौन अराधे ईस।*

मन तो एक है, चेतना एक है। जब एक बार वह किसी व्यक्ति में लग गई तो उसी में लग गई। अब वह चाहे द्वारिका में बसे या बद्रीनाथ में, अपने को उससे कोई मतलब नहीं है। वह तो सदा मेरे अन्दर है।

जो अन्दर की चीज है उसको अनुभव कराने के लिए पहले गुरु के साथ सम्बन्ध होता है और यह माना जाता है कि इस सम्बन्ध का आधार है प्रेम। प्रेम दो तरह का होता है, एक तो वह जो दुनिया में तुम देखते हो और दूसरा जो अन्दर का होता है। भगवान की उपस्थिति का नित्य-निरंतर अनुभव करने के लिए पहले गुरु की उपस्थिति का अपने अन्दर अनुभव करना पड़ता है। इसके लिए अगर कोई सोचे कि हम गुरु के ही घर में रहें, उनके ही कमरे में रहें,

नहीं, उसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दो व्यक्तियों के प्रेम में भौगोलिक दूरी का कोई मतलब नहीं है। उसी तरह दो व्यक्तियों के वैर में भी भौगोलिक दूरी का कोई मतलब नहीं। अगर हम किसी से घृणा करते हैं या किसी से प्रेम करते हैं तो वह बगल में रहे या दूर, कोई फर्क नहीं पड़ता है।

एक ईसाई संन्यासी थे, ब्रदर लॉरेन्स। उन्होंने एक बात कही थी कि जिस तरह से मनुष्य को भय का अनुभव होता है, वैर की प्रतीति होती है, वैराग्य और अनुराग की प्रतीति होती है या शारीरिक वेदना का अनुभव होता है, ठीक उसी तरह से हर व्यक्ति को ईश्वर की प्रतीति होनी चाहिए, अनुभव होना चाहिए। हम लोग भले ही मन्दिर में जाएँ, तीर्थ करें, मगर भगवान की प्रतीति नहीं होती है। हम उनको भूल जाते हैं। हमें बेटा याद रहता है, मरे हुए दादा की याद आती है, दुश्मन की बराबर याद बनी रहती है, मगर भगवान की याद नहीं रहती है। एक छोटी-सी बात, यदि तुम्हारा किसी से झगड़ा हो जाए तो खाते समय तुमको गुस्सा आता है, रात में सोने के समय नींद ही नहीं आती, उसी का ख्याल आता है। किसी आदमी से दुश्मनी हो गई तो उसके साथ इतनी प्रतीति होने लगी और जो भगवान तुम्हारे अन्दर है उसकी प्रतीति ही नहीं होती है!

जीवन का प्रयोजन

गुरु पूर्णिमा के दिन, जिस कठिन मिशन को पूरा करने का संकल्प मनुष्य को लेना है, चाहे वह गृहस्थ हो या साधु, पुरुष हो या स्त्री, चाहे जिस भी जाति या धर्म

का हो, वह यही कि जैसे दुश्मन की याद हमेशा बनी रहती है, वैसे ही भगवान की याद हमारे मन में सतत् कैसे बनी रहे! तुलसीदासजी ने तो स्पष्ट कहा है –

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

जिस मिशन के बारे में मैं बोल रहा हूँ, यह बहुत कठिन है, लेकिन मनुष्य केवल इसी मिशन को पूरा करने के लिए मनुष्य बना है। तुम बच्चे बनाने के लिए मनुष्य नहीं बने हो। बच्चा तो कुत्ता भी पैदा करता है, भैंस भी पैदा करती है। दुनिया में जितने जीव हैं सब बच्चा पैदा करते हैं, तो तुमने बच्चा पैदा करके कौन-सा विशेष काम कर लिया!

मनुष्य का यह जो जन्म हुआ है, उसको ये जो दो पैर मिले हैं जिनसे वह सीधा खड़ा होता है, जो दिमाग मिला है जिससे अपने-पराये को देखता है, जिससे देश, काल और दिशा का ज्ञान प्राप्त करता है, ऐसी व्यापक प्रतिभा वाले मनुष्य का मिशन क्या हो सकता है? यह तर्कसंगत बात कह रहा हूँ, कोई मनगढ़ंत बात नहीं। मनुष्य के पास कितनी सारी खूबियाँ हैं! किसी गाय को कितने ही साल कॉलेज में रख दो, पर वह कम्प्यूटर नहीं सीख सकेगी। किसी भी गधे को तुम विश्वविद्यालय में एम.ए. नहीं करा सकते हो, वह गधे का गधा ही रहने वाला है।

यह मनुष्य जब पैदा हुआ तब इतना बेवकूफ था, इतना असमर्थ था, इतना कमजोर था कि दो साल तक उसकी माँ उसको गोद में ही खिलाती थी, उसकी टट्टी-पेशाब साफ करती थी। वह चल नहीं सकता था, दौड़ नहीं सकता था, उड़ नहीं सकता था। जबकि चिड़िया का बच्चा, जानवर का बच्चा पन्द्रह दिन में अपने आपको संभाल लेता है। और यहाँ बरसों तक, बुढ़ापे तक संभाल नहीं सकता अपने को। पर इस आदमी के पास एक विशेष चीज है। भगवान है, इस बात का आदमी को पता चल चुका है। आपने भगवान को देखा नहीं है, मगर आपको पक्का पता चल चुका है कि कुछ है जरूर। कैसे पता चला? जब मकान देखते हो तो पता चल जाता है कि इसको जरूर मिस्त्री ने बनाया होगा। मिस्त्री को देखने की जरूरत नहीं है। किसी घर को देखकर क्या उसके मिस्त्री होने का प्रमाण देना पड़ेगा मुझे? मिस्त्री था, बस हमने देखा नहीं।

इतनी बड़ी सृष्टि, इतने बड़े सूर्य-चन्द्र-सितारे, इतनी अद्भुत चीजें! शरीर को देखो, मन को देखो, इतनी विचित्रता! यूरेनियम के एक छोटे पत्थर में

इतनी ऊर्जा, इतनी विचित्रता! सब जगह उसने रहस्य भर-भर कर रखे हैं। यह अपने-आप तो नहीं हो सकता। इस प्रकृति में जो चमत्कार आज हम देख रहे हैं, ये चमत्कार अपने आप आ सकते हैं क्या? क्या यह सृष्टि स्वयं प्रस्तुत है? क्या तुम बिना माँ-बाप के, अपने आप जन्मे हो? सबकी माँ है, सबका बाप है, सबको पैदा करने वाल कोई-न-कोई है। तो फिर सृष्टि का स्रष्टा नहीं है, यह कैसे कह सकते हो? सब चीजों को पैदा करने वालों का तुमने नाम दे दिया, पर जब सृष्टि को पैदा करने वाले की बात होती है तब तुम बोलते हो 'मालूम नहीं'!

असली चीज जो हम बोलना चाहते हैं वह यही कि मनुष्य जीवन धारण करके जो कुछ भी हमने पाया या कमाया, क्या वह काफी है? क्या सचमुच में इसी के लिए हमारा जन्म हुआ? अगर तुम यह मानकर चलो कि इसी के लिए तुम्हारा जन्म हुआ तब तुम्हारा-हमारा रिश्ता खत्म! पर यदि तुम यह मान कर चलो कि नहीं, ऐसा नहीं है, यह जो हमको मिला है, यह अपनी जगह पर ठीक है, पर हमारे जीवन का प्रमुख प्रयोजन है परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव। भगवान की प्राप्ति बहुत बड़ी चीज है। यहाँ प्राप्ति की बात कर रहा हूँ, दर्शन की नहीं। आखिर क्या देखोगे? अर्जुन को दिखाया तो डर के मारे हालत खराब हो गयी। तुम लोग तो भूत से डरते हो, भगवान से पता नहीं क्या होगा!

परमात्मा की प्राप्ति अलग चीज है। यह सबसे सरल चीज हम बता रहे हैं। जैसे हम को भय का अनुभव होता है, सरदर्द का अनुभव होता है, पीठदर्द का अनुभव होता है, पेट में मरोड़ का अनुभव होता है, पुत्र की मृत्यु के शोक का अनुभव होता है, शत्रु का अनुभव होता है, स्त्री का अनुभव होता है या लोभ का अनुभव होता है, करीब-करीब उसी तरह से भगवान का अनुभव हो। मनुष्य जीवन का जो सबसे बड़ा मिशन है, वह यही है।

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में वर्णन आता है कि जब युद्ध समाप्त हो गया और रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हो गया, तब एक दिन उन्होंने सारे पुरवासियों को बुलाया और उनसे जो कुछ कहा वही मैं आप लोगों को अभी बोल रहा हूँ – इस दुर्लभ मनुष्य जीवन का उपयोग केवल ईश्वर की प्रतीति में करो। जैसे गोपियों का अनुभव था, कृष्ण कहाँ और गोपियाँ कहाँ। जब तक कृष्ण वृन्दावन में थे तब तक साहचर्य था, मगर जब द्वारिका चले गए तब विरह। भगवान हमको न मिलें ठीक है, भगवान हमको दिखाई भी न दें ठीक है, परन्तु यदि भगवान के लिए हममें बेकली बनी रहे, बेचैनी बनी रहे, तो वही पर्याप्त है!

– गुरु पूर्णिमा, 16 जुलाई 2000, रिखियापीठ

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

गुरु शिष्य सम्बन्ध

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

पृष्ठ 292, ISBN: 978-81-85787-98-5

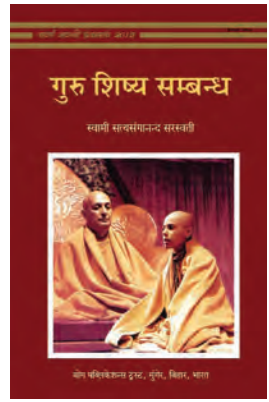

उपलब्ध

अनेक लोग तर्क करते हैं कि गुरु आवश्यक नहीं, क्योंकि वास्तविक गुरु तो हमारे अन्दर हैं। यह सच है, पर कितने लोग उनके निर्देशों को सुनने-समझने का दावा कर सकते हैं! आप चाहे जैसे हों, गुरु आपके जीवन की जरूरत हैं।

यह पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में गुरु को कैसे पहचानें, गुरुओं के प्रकार, शिष्यों के प्रकार, दीक्षा आदि विषयों का समावेश किया गया है। द्वितीय खण्ड में श्री स्वामी सत्यानन्द जी के चयनित सत्संगों का संकलन है। यह पुस्तक साधकों की गुरु सम्बन्धी सभी मुख्य जिज्ञासाओं का समाधान करेगी एवं उनके लिए प्रेरणास्रोत का कार्य करेगी।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप
हरि: ॐ

हमें यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध हैं –

www.satyamyogaprasad.net
www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2022 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2022 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्
सम्पादक